मुद्रक—पं० रामभरोस मालवीय, अभ्युदय प्रेस,

कामायनी के विद्यार्थियों से

ामायनी आधुनिक युग का सबसे महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है।
-संसार में इसके बाद अब तक और कोई इतना प्रभावशाली
नहीं लिखा गया। ऐसे ग्रन्थ की दस-पाँच आलोचना-पुस्तकें
; जाना कोई असाधारण बात नहीं है, वरन् हिन्दी के
ों का ध्यान आकृष्ट न होना ही बड़ा आश्चर्यपूर्ण होता।
अन्य आलोचना-ग्रन्थों के होते हुए भी अपनी पुस्तक
ात कर संख्या-वृद्धि के अपराध से मुक्त होने की मैं कोई
यकता नहीं समझता। हाँ, अपनी पुस्तक की कुछ विशेषताएँ
अवश्य आवश्यक है। कामायनी की जो आलोचनाएँ
ात हुई हैं, उनमें अन्य चाहे जो विशेषताएँ हों, परन्तु वे
ग्रन्थ के सूक्ष्म अध्ययन का अभाव-सा प्रकट करती हैं। उन
चनाओं के अध्ययन से कामायनी की भाषा, विचार-धारा,
ाओं तथा काव्यगत विशेषताओं के स्वरूप को समझने में
को न तो पूरी सहायता मिलती है और न उसके रसास्वादन
कुछ वृद्धि होती है। इस त्रुटि को देखकर ही मुझे यह
 आपके सम्मुख लाने की प्रेरणा मिली।

ामायनी का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के सामने ग्रन्थ
सी सूक्ष्म विशेषताएँ इस पुस्तक में लाई गई हैं, जिन पर
रण रूप से दृष्टि नहीं जाती। कवि के विचारों, उसकी
नाओं तथा ग्रन्थ के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को स्पष्ट करने का
र किया गया है। भाषा के विविध प्रयोग, शब्द-योजना,
की सुरुचि आदि का सूक्ष्म अध्ययन उपस्थित किया गया है।

सत् काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ की आलोचना की गई है। सारांश यह कि इस पुस्तक में मूल ग्रन्थ से सम्बन्ध रखनेवाले सभी आवश्यक तत्त्वों का सूक्ष्म, सारगर्भित तथा अध्ययन-पूर्ण विवेचन किया गया है। कथा की विचित्रता तथा भाषा की जटिलता का अनुमान कर प्रारम्भ में कथा का सारांश देकर, परिशिष्ट में कठिन अंशों के अर्थ स्पष्ट कर दिये गये हैं।

पृष्ठों के संकेत प्रथम संस्करण (सं० '९३) के आधार पर हैं, परन्तु सर्गों के नाम की सहायता से क्रम मिलाने पर, किसी भी संस्करण में अभीष्ट स्थल मिल जायगा।

—व्रजभूषण शर्मा

विषय-सूची



उनकी नाव हिमालय पहाड़ से आ लगती है। वहीं बैठक
अपने अतीत सुख एवं समृद्धि की चिन्ता करने लगते हैं।
की ताण्डव-लीला तथा प्रलय की भीषणता का ध्यान उन्हें शि
चिन्तामग्न एवं सुप्त सा कर देता है। उससे जगने पर
हृदय में आशा का संचार होता है। अपने अस्तित्व (मैं
की प्रबल इच्छा भी उनके हृदय के भीतर जागरित हो जाती
मनु उठकर अपने लिए एक कुटी बनाते हैं और देव-यज्ञ
लगते हैं। उसी समय उनके मन में यह विचार भी पुष्ट होने ल
है कि मेरी ही भाँति कोई और भी कदाचित् बच गया हो।
विचार से वे अपने भावी अतिथि के लिए थोड़ा अन्न कुछ
रख आते हैं।

इसी अन्न को देखकर भ्रमण करती हुई श्रद्धा भी उधर
पहुँचती है। पारस्परिक परिचय होता है। इस परिचय तथा
से दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। श्रद्धा मनु के हृ
में नूतन सृष्टि तथा नवीन जीवन की इच्छा (काम अ
कामना) जागरित करती है। वह उन्हें बतलाती है कि दुःख
पश्चात् सुख का मिलना अवश्यम्भावी है। प्रकृति के यौवन
शृङ्गार बासी फूलों से नहीं होता। अतः तुम्हें भी अब तप,
इत्यादि दैवी संस्कृति के ध्वंसावशिष्ट उपादानों को छोड़
नवीन मार्ग ग्रहण करना है। इस प्रकार श्रद्धा मनु को जीवन
दाँव जीतने के लिए प्रेरित करती है। इसके पश्चात् मनु के हृ
में कामना तथा वासना का उदय होता है। काम स्वप्न में उ
कामायनी को प्राप्त करने के लिए कहता है। मनु जब उसे
करने का मार्ग पूछते हैं, तो उनकी आँखें खुल जाती हैं। इ
मानसिक संघर्ष में मनु का समय व्यतीत होता है।

कामायनी उनकी गृहिणी बनी हुई है। उसने
सुन्दर मृगशावक पाल लिया है। मनु को उ

भी ईर्ष्या होती है और उनमें अधिकार तथा ममत्व की भावना उदित होती है। कामायनी के रूप तथा बातचीत से यह भावना फिर शान्त हो जाती है। मनु अपना हृदय श्रद्धा को समर्पित करते हैं। श्रद्धा लज्जा से नत हो जाती है। मनु फिर कर्म में रत हो जाते हैं। परन्तु देव-संस्कार फिर जग उठते हैं। किलात तथा आकुलि दो असुरों की सहायता से वे पशु-यज्ञ करते हैं। कामायनी के पालित पशु की बलि दी जाती है। कामायनी इससे असंतुष्ट होती है और मनु से उदार होने का आग्रह करती है। मनु उसकी बात मान जाते हैं। और वे भी उसे सोमपान करा देते हैं।

परन्तु मनु का मन शान्त नहीं होता। वे इन्हीं मानसिक भावनाओं के थपेड़े खा रहे हैं। उधर कामायनी गर्भवती होती है। उसको अब अपनी भावी सन्तति की अधिक चिन्ता रहने लगी। अन्न इकट्ठा करना तथा तकली चलाना यही काम उसको अब अधिक प्रिय हो गये। मनु को ईर्ष्या हुई। वे यह न सहन कर सके, और सब कुछ छोड़-छाड़कर चल दिये। घूमते घूमते वे सारस्वत प्रदेश में पहुँचे। वहाँ की रानी इड़ा की सहायता से उन्होंने राज्य-स्थापना की। प्रजा को सुसंस्कृत किया, उसको कृषि तथा कारबार सिखाया।

पर जब उनकी अधिकार-भावना और तीव्र हुई तो वे इड़ा पर भी अधिकार करने की चेष्टा करने लगे। उसे प्रजा की नहीं वरन् अपनी रानी बनाने का उद्योग करने लगे। इस पर देवता रुष्ट हुए, प्रजा बिगड़ी, उसमें तथा मनु में घोर युद्ध हुआ। मनु घायल हो गये। श्रद्धा ने यह सब स्वप्न में देखा। वह अब गर्भवती नहीं, पुत्रवती थी। बस, अपने पुत्र की अँगुली पकड़कर वह अपने प्रियतम की खोज में चल दी। चलते चलते वह उसी स्थान पर आ पहुँची जहाँ मनु घायल पड़े थे। वहाँ पहुँचकर

उसने मनु की सेवा-शुश्रूषा की और वे स्वस्थ हो गये । अब मनु की चेतना जगी। उनको अपनी दशा से निर्वेद हुआ । अनेक प्रकार की विचार-धाराओं में पड़े हुए मनु रात को अकेले उठकर चल दिये और पहाड़ की कंदराओं में पहुँचकर तप करने लगे। प्रातःकाल श्रद्धा कुमार को इड़ा के साथ छोड़ देती है (दोनों का परिणय सा करा देती है) और स्वयं मनु की खोज में चल पड़ती है और अंत में खोज ही लेती है । अब मनु को सतत आनन्द की अखंड सत्ता के दर्शन की लालसा होती है, जहाँ द्वन्द्वों से मुक्ति है और समरसता का राज्य है । वे श्रद्धा से इस आनन्द-लोक को दिखाने की प्रार्थना करते हैं। श्रद्धा स्वीकार कर लेती है। मनु उसके पीछे हो लेते हैं। चलते चलते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ से भावलोक, ज्ञानलोक, तथा कर्म-लोक सब नीचे दिखाई पड़ते हैं। श्रद्धा की सहायता से मनु उनका अलग-अलग दर्शन करते हैं। फिर श्रद्धा उनको अपनी ज्योतिर्मयी स्मिति रेखा से मिला देती है। मिलते ही स्वप्न, स्वाप और जागरण आदि भस्म हो जाते हैं और चिर-आनन्द की स्थापना होती है ।

इधर इड़ा, मानव (कुमार) तथा प्रजा भी धर्म के प्रतिनिधि बैल को लेकर श्रद्धा तथा मनु के आश्रम में पहुँचते हैं। बैल उत्सर्ग कर दिया जाता है, जिससे वह मुक्त, निर्भय स्वच्छन्द तथा सुखी रहे। [इसका अभिप्राय यह है कि धर्म को भी इसी प्रकार मुक्त तथा स्वच्छन्द रहना चाहिए]

मनु सब को चिर-आनन्द तथा सुख का उपदेश देते हैं— "द्वयता दुःख का कारण है सबको अपना समझो। 'यह मैं हूँ— अहमस्मि-के ग्रहण करने से यह विश्व बड़ा सुखमय नीड़ बन जाता है।" अंत में कवि चिर-आनन्द का दर्शन करता है । इस

प्रकार कथा मनु की चिन्ता से आरम्भ होकर उनके आनन्द में पूर्ण होती है।

यह तो कामायनी की साधारण कथा है पर इसके साथ-साथ कवि ने मनुष्य के विकास के आध्यात्मिक आधार की भी कथा कही है। इस सम्बन्ध में ग्रन्थ के आमुख में दिए हुए कवि के शब्द उल्लेखनीय हैं "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है; यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।"

× × × ×

"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसी लिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। 'श्रद्धां, हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसुः।' (ऋग्वेद १०,-१५१-४) इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की कथा-सृष्टि हुई है।"

अतः कामायनी की कथा एक ओर तो जलप्लावन के बाद मनु द्वारा देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति की प्रतिष्ठा का वर्णन करती है, और दूसरी ओर मन के दोनों पक्ष हृदय तथा मस्तिष्क का संघर्ष भी उपस्थित करती है, जिसके अन्त में हृदय की विजय और चिर आनन्द की स्थापना होती है। हृदय और बुद्धि के इसी संघर्ष में मनुष्य का जीवन व्यतीत होता है। बुद्धिवाद में पड़कर मनुष्य का मन सदैव उलझन में पड़ा रहता है। उसको अनेक प्रकार की शंकाएँ तथा चिंताएँ सताती

रहती हैं। जब भावनाएँ आकर उसमें प्रेम तथा उदारता का आविर्भाव करती हैं तभी वह शान्ति पाता है। यह शान्ति भी निष्क्रिय नहीं होती, वरन् मनुष्य को सक्रिय आनन्द देती है। कथा के साथ-साथ कवि इस सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करता चलता है।

कथा का आधार

यदि हम वेदों और स्मृतियों को इतिहास मान लें तो कामायनी की कथा की आधारभूत घटनाएँ प्रायः ऐतिहासिक हैं। मानवों के आदि-पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों तक बिखरा पड़ा है। मनु, श्रद्धा तथा इड़ा ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। जलप्लावन, वैवस्वत मनु और श्रद्धा से मानवीय सृष्टि का प्रारम्भ, श्रद्धा का काम की गोत्रजा होना, मनु का प्रथम पथप्रदर्शक होना, मनु की नाव का उत्तरगिरि हिमवान् प्रदेश में पहुँचना, किलात, आकुलि असुरों द्वारा मनु से पशु-यज्ञ कराना, इड़ा तथा मनु की बात-चीत—इड़ा का मनु को उनकी पुत्री बताना, उसका मनु के यज्ञ से पालित होना—इड़ा का प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका तथा शासन करनेवाली होना, इड़ा पर अधिकार करने की मनु की चेष्टा, फलतः देवताओं का कोप और मनु का दण्ड पाना आदि प्रधान घटनाएं ऐतिहासिक हैं। ग्रन्थ के आमुख में कवि ने इन सब घटनाओं की ऐतिहासिकता का प्रमाण दिया है। जल-प्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम खंड के आठवें अध्याय से आरम्भ होता है। "श्रद्धा देवो वै मनुः" में मनु को श्रद्धा देव कहा गया है। भागवत में श्रद्धा तथा मनु से मानवीय सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है।

"ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास पुत्रान् स आत्मवान्।"

"कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका" में सायण ने श्रद्धा को काम-गोत्र की बालिका कहा है। शतपथ में मनु प्रथम पथ-प्रदर्शक कहे गये हैं "मनुर्ध्वा अग्रेयसेने, यदनुकृत्ये माः प्रजा यजन्ते।"

"किलाता कुली—इति हासुर ब्रह्मावासतु:" से दोनों राक्षसों की ऐतिहासिकता का प्रमाण मिलता है। इड़ा तथा मनु, की बात-चीत का शतपथ में इस प्रकार उल्लेख है—"तां ह मनुरुवाच—का असि" इति। "तव दुहिता" इति। "कथं भगवति मम दुहिता" इति। ऋग्वेद में इड़ा प्रजापति मनु की पथ-प्रदर्शिका मनुष्यों का शासन करनेवाली कही गई है। इड़ा पर अधिकार करने के कारण मनु को जो देवताओं का कोप-भाजन होना पड़ा, उसका प्रमाण भी शतपथ में है।

उपर्युक्त कथन से यह तो स्पष्ट है कि कामायनी की मूल कथा के दाने प्राचीन आर्य-साहित्य में बिखरे पड़े हैं। पर इन सब को एकत्रित करके सम्बद्ध कथा का रूप देने, उसमें यथावश्यक अपने दाने मिलाकर एक सूत्र में पिरोकर माला बनाने का काम कवि का है। इस कथा के मानवीकरण करने का श्रेय भी कवि को ही है। मानवीकरण से मेरा अभिप्राय यह है कि उन्होंने कथा को ऐसा रूप दे दिया है कि वह साधारण मनुष्यों की कथा प्रतीत होती है। उसके पात्र दैवी न प्रतीत होकर साधारण मनुष्य प्रतीत होते हैं। वे हमारी ही भाँति ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, वासना, प्रेम, वात्सल्य आदि सभी भावनाओं से भावित हैं।

वास्तव में कवि-कर्म बड़ा कठिन है। उसके वर्णन इतने सजीव होने चाहिए जिससे उसके पात्रों का मानवीकरण ही नहीं वरन् साधारणीकरण हो जावे। साधारणीकरण से तात्पर्य यह है कि हम उनके कार्यों में, उनके रागों तथा मनोविकारों में तादात्म्य अनुभव करने लगें। उनकी हँसी हमारी हँसी हो जावे, उनके आँसुओं में हमारी आसुओं की बूँदें जा मिलें। जब पात्रों का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है तब पाठकों के हृदय में गुप्त वासना रूप में अवस्थित भाव जागरित होते हैं और उस अलौकिक आनन्द की सृष्टि करते हैं, जिसे काव्यभाषा में रस कहते हैं।

अतः कवि सदैव ही घटनाओं के मूल में स्थित चिरसत्य मानवीय मनोवैज्ञानिक तत्त्वों तथा मनोविकारों की खोज में रहता है—चाहे वे घटनाएँ ऐतिहासिक हों या काल्पनिक। वे ही काव्य को सरस बनाते हैं, वे ही उसे अमरत्व प्रदान करते हैं, और वे ही उसे चिरसत्य की भित्ति पर आरूढ़ करते हैं। मनुष्य घटनाओं से इतना प्रेम नहीं करता। उसका सम्बन्ध तो उन घटनाओं के मूल में स्थित तथा फलस्वरूप उत्पन्न मनोवैज्ञानिक तथा हृदयस्थ विकारों से है। उदाहरण के लिए हमसे यदि कोई यह कहे कि स्टैलिनग्रैड पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ। हम कहेंगे 'अच्छा' और चल देंगे। '५ सहस्र मनुष्य मारे गये' इस समाचार का भी कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ेगा। कारण यह है कि समाचारदाता ने उन व्यक्तियों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध तो कराया ही नहीं। कवि यदि उन पाँच सहस्र व्यक्तियों में से एक की भी करुण कहानी को अपनी कल्पना से सजीव बना कर हमारे सामने रख दे तो हमारा हृदय करुणारस से आर्द्र हो जावेगा। हम उन व्यक्तियों से सहानुभूति करने लगेंगे। जलियाँ वाले बाग के वर्णन में श्री सुभद्राकुमारी चौहान ने केवल एक ही युवती के वैधव्य-वर्णन से इतनी सजीवता उत्पन्न कर दी है जिसे पढ़कर पाषाण-हृदय भी दया से पिघल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि घटनाओं को केवल एकत्र कर देने से काव्य-रचना नहीं हो सकती। उन घटनाओं को सजाना तथा उन्हें सम्बद्ध करना कवि का काम है।

प्रसाद जी का कार्य साधारण इतिहास-वर्णन से कुछ भिन्न भी है। उनके पात्र मनुष्य नहीं, देवी तथा देवता हैं। रस की अभिव्यक्ति के लिए उनका पहले दैवीकरण से मानवीकरण तथा मानवीकरण से साधारणीकरण करना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य उन्हीं लोगों के कृत्यों तथा भावों से प्रभावित

होता है जिनको वह अपना ही सा अशक्त पाता है। इन्द्र के वज्र की प्रचंडता अथवा श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र की अमोघता से हम इतना प्रभावित नहीं होते जितना राममूर्ति के मोटर रोकने अथवा जीभ से सोडावाटर की बोतल खोल देने से। यदि साधारण मनुष्यों में भी दैवी भावों का आरोप कर दिया जाता है, तो यह बात चली जाती है। गांधीजी के कामों को लोग यह कहकर टाल देते हैं कि उनकी क्या है, वे तो महात्मा हैं।

सारांश यह है कि कवि के लिए कल्पना की सहायता लेना अनिवार्य सा है। ऐतिहासिक घटनाओं में भी कवि रसोत्पादन के लिए परिवर्तन कर देता है। प्राचीन परम्परा से चली आई हुई घटनाओं का भी क्रम कवि अपने ढंग से लगाता है। तुलसीदास जी ने वाल्मीकि का क्रम बदला है, जायसी ने पद्मावत में नवीन घटनाओं का समावेश किया है। कामायनी की कथा प्रागैतिहासिक है। उसकी घटनाएँ तो बिखरी पड़ी हैं। अतः प्रसादजी के लिए नवीन घटनाओं का समावेश करना अवश्यंभावी है। केवल देखना यह है कि ऐसी घटनाएँ कितनी हैं, उनसे काव्य की रोचकता बढ़ती है अथवा नहीं तथा वे पूर्ण काव्य के प्रधान उद्देश्य में कहाँ तक सहायक होती हैं।

कामायनी में उक्त घटनाओं का वर्णन तो कवि ने कल्पना के आधार पर किया ही है, इसके अतिरिक्त उसने नवीन घटनाओं का भी समावेश किया है। प्रसाद जी ने स्वीकार किया है कि "कामायनी की कथा में शृङ्खला मिलाने के लिए कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार, मैं नहीं छोड़ सका हूँ।" काम की मनु को चेतावनी, कामायनी का पुत्र मानव, इड़ा के साथ उसका विवाह, प्रजा का मनु के साथ युद्ध, मनु का शान्ति की खोज में भाग जाना, श्रद्धा

की खोज, इड़ा का श्रद्धा के सामने नत हो जाना तथा भावलोक, ज्ञानलोक, एवं कर्मलोक का मनु को श्रद्धा द्वारा दर्शन कराना आदि घटनाएं कल्पनाप्रसूत हैं। मानव की उत्पत्ति तथा उसका इड़ा के साथ विवाह मनु की परंपरा छोड़ जाने के लिए आवश्यक ही है। मनु का चुपके से आनन्द की खोज में चले जाना तथा श्रद्धा का मनु की खोज में जाना—ये घटनाएँ काव्य में कुतूहल तथा आकर्षण उत्पन्न कर देती हैं।

प्राचीन आख्यान में प्रसाद जी ने एक बड़ा परिवर्तन कर दिया है। इस परिवर्तन का कारण उनके जीवन-सम्बन्धी विचार हैं। इड़ा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी उसको उन्होंने श्रद्धा से बहुत नीचे गिरा दिया है। दया, माया, ममता, उदारता, आदि भावों का पद उन्होंने ज्ञान के नीचे कर दिया है। मनु के दुःखों का मूल कारण इड़ा को ही ठहराया गया है। जहाँ मनु श्रद्धा को अतृप्त जीवन की तृप्ति बतलाते हैं—

तुम अजस्र वर्षा सुहाग की,
और स्नेह की मधु रजनी,
चिर अतृप्ति जीवन यदि था
तो तुम उसमें संतोष बनी।

वहाँ इड़ा को अपना शत्रु समझते हैं। श्रद्धा और मानव को इड़ा के साथ छोड़ आने पर खेद प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

'वह इड़ा कर गई फिर भी छल'

इड़ा भी अपराधिनी की भाँति श्रद्धा से क्षमा याचना करने आती है—

'दो क्षमा, न दो अपना विराग
सोई चेतनता उठे जाग॥'

जो इड़ा मनु की पथ-प्रदर्शिका कही गई है उसी इड़ा को प्रसाद जी ने मनु को पथ-भ्रष्ट करनेवाली दिखलाया है। श्रद्धा उसी को मार्ग दिखलाती है। इस परिवर्तन का कारण प्रसाद जी की प्रेममयी रहस्य भावनाएँ हैं। वे यह अनुभव करते थे कि बुद्धिवाद ही जीवन में दुःख का कारण है। राज्य-स्थापना तथा अधिकार-भावना उनके विचार से बुद्धि का ही फल है जो अन्त में दुःख का कारण बन जाता है। प्रसाद जी ने बुद्धि अथवा इड़ा को गीता की बुद्धि अथवा ज्ञान से समकक्षता नहीं दी। वहाँ तो बड़े से बड़े रहस्य बुद्धि की परिपक्वता से ही प्राप्त किये जाते हैं—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥

अर्थात् ऐसे, मेरे द्वारा कहे गये, अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र को तत्त्व से जानकर बुद्धिमान और कृतार्थ हो जाता है। प्रसाद जी की इड़ा का स्वरूप बहुत निम्न कोटि का है। उन्होंने बुद्धि, मनीषा, मति, आशा तथा चिन्ता एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न नाम बतलाये हैं। उनका ज्ञानी पुरुष वह नहीं जो प्रलय में भी व्याकुल न हो—

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥
—श्रीमद्भगवद्गीता।

अर्थात् इस ज्ञान को आश्रय करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में (पुनः) उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसाद जी का अद्वैतमूलक रहस्यवाद, जिसमें मनुष्य सारे विश्व में एक ही तत्त्व की प्रधानता देखता है और जिसके कारण अपने पराये का भाव नष्ट हो जाता है और जो चिरआनन्द का उद्गम, स्रोत

तथा आधार है, वह ज्ञान से नहीं वरन् हृदय से सम्बन्ध रखता है। इस दृष्टि से श्रद्धा की मुख्य तथा इड़ा की गौण स्थिति रखना क्षम्य ही नहीं वरन् वाञ्छनीय है। काव्य की दृष्टि से अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कवि यह अपनी बात अपने पाठकों तक पहुँचा सका है। इस प्रश्न का उत्तर भी स्पष्ट है। कथानक, कथोपकथन और घटनाओं के परिणाम सभी से यह बात प्रकट होती है कि बुद्धि हृदय के पीछे है। कामायनी ही नायिका है, श्रद्धा नहीं; अकेली इड़ा गड्ढे में गिरा देनेवाली बताई गई है। अतः जो परिवर्त्तन कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं में कर दिये हैं वे ग्रन्थ के मूल उद्देश्य की पूर्त्ति करते हुए कथानक के प्रवाह के अनुकूल हुए हैं तथा काव्य की रोचकता अथवा सरसता बढ़ाने में सहायक हुए हैं।

आध्यात्मिक स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

जैसा पहले कहा जा चुका है, कामायनी ऐतिहासिक कथा के साथ साथ मन के दोनों पक्ष हृदय तथा बुद्धि का भी संघर्ष उपस्थित करती है। कामायनी हृदय-स्वरूपा और इड़ा बुद्धि-स्वरूपा है। चिर-आनन्द की प्राप्ति ही हमारे जीवन का ध्येय है। उपनिषद्, गीता आदि हमारे दार्शनिक ग्रन्थों का मूल तत्त्व यही आनन्द है। सच्चिदानन्द से भी जीवन का लक्ष्य आनन्द सिद्ध होता है। इसी आनन्द की अनुभूति प्रसाद जी कर चुके थे। अंतरंग सरलता तथा बहिरंग सौन्दर्य इस आनन्द के मूल तत्त्व हैं प्रेम को संकुचित कर देने से इस आनन्द में बाधा पहुँचती है। जीवमात्र में आत्मभाव होना इस आनन्द के लिए आवश्यक है। वे यह अनुभव करते हैं कि 'विश्व-चेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम जीवन है'—'एक घूँट'। प्रसाद जी की अनुभूति में विश्व चेतना एक समुद्र के समान है। भिन्न भिन्न जीवन उसी चेतना-समुद्र में उठती हुई लहरों के समान है। प्रसाद जी ने इस आनन्द का अनुभव ज्ञान द्वारा नहीं वरन् हृदय द्वारा किया था। उनकी अनुभूति रागात्मिका थी। वे रहस्यवादी हैं। अतः उपनिषद् के अद्वैतवाद ने प्रसादजी के काव्य में भावात्मक रूप धारण कर लिया है। कामायनी का कवि अपने पाठकों को इसी आनन्द की अनुभूति कराता है। यह आनन्द जीवन से अलग पहाड़ों की कंदराओं में बैठे हुए तपस्वी का आनन्द नहीं है, वरन् इसी संसार में रहते हुए मनुष्य का, यहीं की चिन्ता,

आशा, ईर्ष्या, वासना, काम तथा संघर्ष के थपेड़े खाते हुए मनुष्य का आनन्द है। कामायनी की कथा मनु की चिन्ता से ही प्रारम्भ होती है। इसके बाद वे आशा, काम, वासना, ईर्ष्या आदि मनोविकारों के शिकार होते हैं; बुद्धि के अत्यधिक प्रभाव के कारण संघर्ष होता है और अन्त में श्रद्धा की सहायता से मनु को चिर-आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्द अन्त में इन्हीं मनोविकारों के समन्वय से प्राप्त होता है। इन्हीं विविध भावनाओं तथा संघर्षों की समष्टि इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया में होती है और इस समन्वय को करानेवाली है भावना-स्वरूपिणी श्रद्धा, बुद्धि स्वरूपिणी इड़ा नहीं। आध्यात्मिक चेतना कामायनी की कथा की आत्मा है। कवि मानवता को इसी समन्वय का संदेश देता है —

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हों हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ॥

श्रद्धा के आध्यात्मिक स्वरूप का बड़ा विशद वर्णन कामायनी में हुआ है। वह सौन्दर्य की मूर्ति और सद्गुणों की जननी बताई गई है। दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा अगाध विश्वास की निधि है। जड़, चेतनता की गाँठ की भी वही सुलझन है। उसके सौन्दर्य तथा आन्तरिक स्वरूप का कैसा सुन्दर चित्रण प्रसाद जी ने किया है—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लंबी काया, उन्मुक्त।
मधु-पवन-क्रीड़ित ज्यों शिशु साल,
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।
मसृण गांधार देश के, नील,
रोम वाले मेषों के चर्म

ढँक रहे थे उसका वपु कान्त,
बन रहा था वह कोमल वर्म।
नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

आह! वह मुख पश्चिम के व्योम,
बीच जब घिरते हों घन श्याम।
अरुण रवि-मंडल उनको भेद,
दिखाई देता हो छबि-धाम।

घिर रहे थे घुंघराले बाल,
अंस अवलंम्बित मुख के पास।
नील घन-शावक से सुकुमार,
सुधा भरने को विधु के पास।

और उस मुख पर वह मुसक्यान,
रक्त किसलय पर ले विश्राम।
अरुण की एक किरण अम्लान,
अधिक अलसाई हो अभिराम।

नित्य यौवन छवि से हो दीप्त,
विश्व की करुण कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति॥

उषा की पहली लेखा कांत,
माधुरी सी भीगी भर मोद।
मद भरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक द्युति की गोद॥

यह श्रद्धा का बाह्य सौन्दर्य है। वह नित्य यौवनवाली चिर युवती है और उषा के रंगीन चित्रपट की भाँति स्फूर्ति प्रदान करनेवाली है। ऐसा सौन्दर्य निराशा में आशा जागरित करने वाला होता है। फलस्वरूप चिन्तित मनु का ताप उसे देखते ही किनारा करने लगा, अंधकार विलीन हो गया और क्षुब्ध हृदय शांत होने लगा। वे श्रद्धा से प्रश्न करते हैं—

कौन हो तुम वसंत के दूत;
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार।
नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कांत—
कल्पना की लघु लहरी दिव्य,
कर रही मानस हलचल शांत।

श्रद्धा का यह प्रभाव दिव्य है। उपनिषद् में वर्णित परब्रह्म के दर्शन का भी यही प्रभाव पड़ता है—

भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इसी प्रभाव का रहस्यात्मक चित्रण किया है।

बाजिवे ना को तूरी भेरी
जानिवेना को केहो।
केवल जीव आँधार केटे,
आलोय भरवे गेहो।
पुलक परश पेये।
नीरवे तार चिर दिनेर घूचिवे सन्देह
कूले आसिवे नेये।

अर्थात् मेरा नाविक बहुत शांति से आवेगा, कोई तुरही-भेरी बाजे नहीं बजेंगे और न कोई जानेगा। परन्तु सारा अँधेरा नष्ट हो जायगा, घर प्रकाश से भर जायगा और चिर दिन के सन्देह नष्ट हो जावेंगे।

अब और अधिक स्पष्ट शब्दों में कामायनी का स्वरूप देखिए श्रद्धा मनु को आत्मसमर्पण करती हुई अपने को दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा अगाध विश्वास की मूर्ति बतलाती है—

दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न धन स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

श्रद्धा सभी दैवी तथा नारी गुणों से पूर्ण है। वह विस्मृति के अचेतन स्तूप-मनु के स्मृति पटल खोल देती है। इस संसार में उसके आने का उद्देश्य उसके पिता काम के मुख से सुनिए—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम - कला
उसका संदेश सुनाने को
संसृति में आई वह अमला।
हम दोनों (काम तथा रति) की संतान वही
कितनी सुन्दर भोली भाली,
रंगो ने जिनसे खेला हो
ऐसे फूलों की वह डाली।
जड़ चेतनता की गाँठ वही
सुलझन है भूल सुधारों की,
वह शीतलता है शांतिमयी
जीवन के उष्ण विचारों की।

प्रसाद ने श्रद्धा को ही हृदय के द्वन्द्वों को नष्ट करने वाली शक्ति कहा है। तुलसीदास की भक्ति, गोपियों की अनुरक्ति और मीरा की टेक ही प्रसाद की कामायनी है। जिस प्रकार जामवन्त ने हनुमान को उनके बल का स्मरण कराया था उसी प्रकार लज्जा भी श्रद्धा को उत्साहित करती हुई कहती है—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग-तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।
देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर अन्तर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।
आँसू से भींगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि-पत्र लिखना होगा।

श्रद्धा स्वयं अपने गीत में अपने इन सब गुणों को समष्टि रूप में गाती हुई पाई जाती है। वह अपने को चेतना को जाग्रत् रखनेवाली, हृदय की व्यथा को दूर करनेवाली, विश्व के तापों का अपहरण करनेवाली तथा निराशा में आशा की झलक-स्वरूपिणी बतलाती है :—

तुमुल कोलाहल-कलह में,
मैं हृदय की बात रे मन।

विकल होकर नित्य चंचल, खोजती जब नींद के पल;
चेतना थक सी रहीं तब, मैं मलय की बात रे मन!

चिर-विषाद-विलीन मन की, इस व्यथा के तिमिर वन की
मैं उषा सी ज्योति रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन !
जहाँ मरु - ज्वाला धधकती, चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की, मैं सरस बरसात रे मन !
पवन की प्राचीर में रुक, जला जीवन जो रहा झुक;
इस झुलसते विश्व वन की, मैं कुसुम ऋतु रात रे मन !
चिर निराशा-नीरधर से, प्रतिच्छायित अश्रु सर में,
मधुप मुखर मरंद मुकुलित, मैं सजल जलजात रे मन !

अपने आंतरिक स्वरूप का परिचय श्रद्धा स्वयं अपने शब्दों में इड़ा को देती है—

मैं क्या दे सकती तुम्हें मोल
यह हृदय ! अरे दो मधुर बोल ।
मैं हँसती हूँ रो लेती हूँ,
मैं पाती हूँ खो देती हूँ,
इससे ले उसको देती हूँ,
मैं दुख को सुख कर लेती हूँ ।
अनुराग भरी हूँ मधुर घोल,
चिर-विस्मृत सी हूँ रही डोल ।

इस प्रकार प्रसाद जी की श्रद्धा सौन्दर्य तथा अगाध प्रेम का साकाररूप है "श्रद्धा इस संसृति की रहस्य, व्यापक विशुद्ध विश्वास मयी है ।" अतः वही इस जीवन नौका को ठीक रखने में समर्थ हो सकती है । उसमें दैवी गुण भी हैं । मनु जब पहाड़ पर चढ़ते चढ़ते थक जाते हैं, जब उनका स्थूल शरीर उस हलके वायुमंडल में नहीं ठहर सकता तो श्रद्धा के किञ्चित् स्पर्श से वे वहाँ ठहरने में समर्थ हो जाते हैं । कवि ने श्रद्धा को स्थल स्थल पर 'देवि' 'सर्व मङ्गले' तथा 'कल्याणमयी' कहकर पुकारा है । वही अन्त में मनु

को अपना सहारा देकर चिदानन्द ब्रह्म के चरणों तक ले जाती है—

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल ;
मिटते असत्य से ज्ञान-लेश
समरस अखंड आनन्द वेश ॥

श्रद्धा पर इस महान श्रद्धा के कारण प्रसाद इड़ा को उतना महत्त्व नहीं दे सके हैं जितना ज्ञान का महत्त्व दार्शनिक ग्रंथों में बताया गया है। न तो उसका वाह्य सौन्दर्य ही और न उसकी आन्तरिक दीप्ति ही श्रद्धा की समकक्षता कर पाई है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इड़ा को उन्होंने ज्ञानस्वरूपिणी माना है। उन्होंने 'आमुख' में लिखा है कि 'ऋग्वेद में इड़ा को धी, बुद्धि का साधन करनेवाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करनेवाली कहा है'। पर जैसा कहा जा चुका है, यह चेतना प्रदान करने की शक्ति उन्होंने श्रद्धा को दे दी है। इतना ही नहीं, प्रसाद जी ने तो उसे विमार्ग पर ले जानेवाली बताया है—"बुद्धिवाद के विकास में,अधिक सुख की खोज में दुख मिलना स्वाभाविक है।" हाँ अन्त में इच्छा, ज्ञान तथा क्रियाओं के समन्वय में उसे स्थान देकर उसके भी आँसू पोंछ दिये गये हैं। अतः इड़ा के वाहरी स्वरूप में भी उन्होंने उलझन दिखाई है, ज्ञान की सुलझन नहीं—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल।

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि-खंड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म-पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,

चिर-विषाद-विलीन मन की, इस व्यथा के तिमिर वन की
मैं उषा सी ज्योति रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन !
जहाँ मरु - ज्वाला धधकती, चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की, मैं सरस बरसात रे मन !
पवन की प्राचीर में रुक, जला जीवन जो रहा झुक;
इस झुलसते विश्व वन की, मैं कुसुम ऋतु रात रे मन !
चिर निराशा-नीरधर से, प्रतिच्छायित अश्रु सर में,
मधुप मुखर मरंद मुकुलित, मैं सजल जलजात रे मन !

अपने आंतरिक स्वरूप का परिचय श्रद्धा स्वयं अपने शब्दों में इड़ा को देती है—

मैं क्या दे सकती तुम्हें मोल
यह हृदय ! अरे दो मधुर बोल ।
मैं हँसती हूँ रो लेती हूँ,
मैं पाती हूँ खो देती हूँ,
इससे ले उसको देती हूँ,
मैं दुख को सुख कर लेती हूँ ।
अनुराग भरी हूँ मधुर घोल,
चिर-विस्मृत सी हूँ रही डोल ।

इस प्रकार प्रसाद जी की श्रद्धा सौन्दर्य तथा अगाध प्रेम का साकाररूप है "श्रद्धा इस संसृति की रहस्य, व्यापक विशुद्ध विश्वास मयी है ।" अतः वही इस जीवन नौका को ठीक रखने में समर्थ हो सकती है । उसमें दैवी गुण भी हैं । मनु जब पहाड़ पर चढ़ते चढ़ते थक जाते हैं, जब उनका स्थूल शरीर उस हलके वायुमंडल में नहीं ठहर सकता तो श्रद्धा के किञ्चित् स्पर्श से वे वहाँ ठहरने में समर्थ हो जाते हैं । कवि ने श्रद्धा को स्थल स्थल पर 'देवि' 'सर्व मङ्गले' तथा 'कल्याणमयी' कहकर पुकारा है । वही अन्त में मनु

को अपना सहारा देकर चिदानन्द ब्रह्म के चरणों तक ले जाती है—

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल ;
मिटते असत्य से ज्ञान-लेश
समरस अखंड आनन्द वेश ॥

श्रद्धा पर इस महान श्रद्धा के कारण प्रसाद इड़ा को उतना महत्त्व नहीं दे सके हैं जितना ज्ञान का महत्त्व दार्शनिक ग्रंथों में बताया गया है। न तो उसका बाह्य सौन्दर्य ही और न उसकी आन्तरिक दीप्ति ही श्रद्धा की समकक्षता कर पाई है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इड़ा को उन्होंने ज्ञानस्वरूपिणी माना है। उन्होंने 'आमुख' में लिखा है कि 'ऋग्वेद में इड़ा को धी, बुद्धि का साधन करनेवाली, मनुष्य को चेतना प्रदान करनेवाली कहा है'। पर जैसा कहा जा चुका है, यह चेतना प्रदान करने की शक्ति उन्होंने श्रद्धा को दे दी है। इतना ही नहीं, प्रसाद जी ने तो उसे विमार्ग पर ले जानेवाली बताया है—"बुद्धिवाद के विकास में, अधिक सुख की खोज में दुख मिलना स्वाभाविक है।" हाँ अन्त में इच्छा, ज्ञान तथा क्रियाओं के समन्वय में उसे स्थान देकर उसके भी आँसू पोंछ दिये गये हैं। अतः इड़ा के बाहरी स्वरूप में भी उन्होंने उलझन दिखाई है, ज्ञान की सुलझन नहीं—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि-खंड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म-पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,

गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान,
वक्षःस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान,
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये,
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल,
चरणों में थी गति भरी ताल ॥

इसी एक पद में इड़ा के बाह्य तथा आभ्यंतरिक रूप का चलता वर्णन कर दिया गया है। उसकी लटें भी जाल की तरह उलझी हैं, ज्ञान की सुलझन उनमें नहीं है। संसृति के विज्ञान ज्ञान भी उसके वक्षःस्थल पर ऐसे रक्खे हुए हैं जैसे गधे की पीठ पर किताबों का बोझ। 'एकत्र' विवेकहीनता का अभिव्यंजक है। वह त्रिगुणातीत भी नहीं है। गीता का ज्ञानी पुरुष तो गुणातीत होता है। गीता में ज्ञानी तथा गुणातीत के लक्षण एक ही बतलाये गये हैं—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

ऐसा गुणातीत व्यक्ति होता है और अमूढ़ अर्थात् ज्ञानी का भी ऐसा ही लक्षण है; उस अविनाशी परम पद को वह प्राप्त होता है जो—

निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

परन्तु यह चित्रण प्रसाद जी की रहस्यमयी भावना के अनुकूल ही हुआ है, कामायनी के कथा-प्रवाह से यह वर्णन सर्वथा संगत है। यही काव्य की उत्तमता है।

श्रद्धा तथा इडा के संघर्ष से व्याकुल मनु अंत में श्रद्धा की सहायता से इच्छा, ज्ञान तथा कर्म का समन्वय अनुभव कर समरसता का आनन्द प्राप्त करते हैं। रहस्य वाले सर्ग में भावलोक, ज्ञानलोक तथा कर्मलोक का बड़ा विशद वर्णन किया है। भावमयी प्रतिमा का मन्दिर भावलोक ही जीवन की मध्यभूमि बताया गया है। अमृत तथा विष, सुख तथा दुःख की समरसता भी यहीं होती है—

चिर वसंत का यह उद्गम है
पतझर होता एक ओर है,
अमृत हलाहल यहाँ मिले हैं
सुख दुख बँधते एक डोर हैं।

कर्मलोक कोलाहल, एषणा, हिंसा, गर्व, तृष्णा, आकांक्षा, ममता आदि त्याज्य भावनाओं से पूर्ण बतलाया गया है। यही दुखों का आगार भी है। ज्ञानलोक पुंजीभूत रजत के समान उज्ज्वल तो है पर उसमें वह प्रकाश नहीं बताया गया जहाँ सत्-असत् का ज्ञान हो जाता है, वरन् वहाँ मनुष्यों को ६६ के चक्कर में डालने वाले बुद्धि-चक्र ही की विशेषता बतलाई गई है। इस प्रकार भावलोक की चेतनता, कर्मलोक के कोलाहल एवं क्रूरता तथा ज्ञानलोक की उज्ज्वलता का वर्णन हुआ है। इनका समन्वय न होने पर जीवन विडंबना-पूर्ण रहता है—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

और समन्वय हो जाने पर चिर-आनन्द की अनुभूति होती है। उनके सामञ्जस्य में अनाहत नाद सुनाई पड़ता है—

महा ज्योति रेखा सी बनकर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें ।
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें ।

नीचे ऊपर लचकीली वह
विषम वायु में धधक रही सी;
महा शून्य में ज्वाल सुनहली
सबको कहती 'नहीं नहीं' सी ।

शक्ति तरंग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर उठा-सा,
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठा-सा ।

चितिमय चिता धधकती अविरल
महाकाल का विषम नृत्य था,
विश्व रंध्र ज्वाला से भर कर
करता अपना विषम कृत्य था ।

और इस ज्योति में

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।

आनन्द का स्थान प्रसाद जी ने कैलाश बतलाया है। वहीं पहुँचकर मनु को श्रद्धा की सहायता से आनन्द मिलता है। कैलाश शिवजी का स्थान है। अतः उनसे सम्बन्धित और भी शब्द पाये जाते हैं। त्रिपुर राक्षस भी है जिसका शिवजी ने संहार किया था। ज्ञान, कर्म तथा भावलोक जब तक अलग रहते हैं

तब तक वे राक्षस रूप में दु:ख-सुख देते रहते हैं। इनका समन्वय ही त्रिपुर का संहार है—

यही त्रिपुर है देखा तुमने
तीन बिंदु ज्योतिर्मय इतने,
अपने केन्द्र बने दुख-सुख में
भिन्न हुए हैं, ये सब कितने।

इस त्रिपुर के अतिरिक्त शिवजी के वृष, घंटा, त्रिशूल, चन्द्र, किरीट, गौरी, शृंग और डमरू आदि के भी नाम आये हैं परन्तु ये सब आनन्द के प्रतीक होकर आये हैं। प्रसाद जी के शिव साम्प्रदायिकता को उत्पन्न करनेवाले नहीं हैं वरन् समरसता का स्रोत बहानेवाले हैं। इन स्थानों के वर्णनों पर ध्यान दीजिए—

(अ) शक्ति तरंग प्रलय पावक का
उस त्रिकोण में निखर उठा-सा,
शृंग और डमरू निनाद बस
सकल विश्व में बिखर उठा सा,

(आ) मनु ने कुछ कुछ मुस्क्या कर
कैलास ओर दिखलाया;
बोले 'देखो' कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।

(इ) वह चन्द्र किरीट रजत नग
स्पन्दित सा पुरुष पुरातन।
देखता मानसी गौरी
लहरों का कोमल नर्तन।

आनन्द के इन शैव उपकरणों के अतिरिक्त उन्होंने कृष्ण के जीवन के भी आनन्दपूर्ण चित्र उपस्थित किये हैं। उनका वंशी-वादन भी है और नटवर वेश भी—

(अ) देखा मनु ने नर्तित नटेश
हत-चेत पुकार उठे विशेष;
वह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल
पावन बन जाते हैं निर्मल।

(आ) फिर वेणु-रंध्र से उठकर
मूर्छना कहाँ अब ठहरे

इस प्रकार स्पष्ट है कि उनके ये शैव उपकरण प्रतीक-स्वरूप हैं। कामायनी में शैव दृष्टिकोण अथवा अन्य किसी सांप्रदायिक दृष्टिकोण को देखना भूल है। समरसता तथा भेद भाव का नाश ही उसका संदेश है।

यही आध्यात्मिक धारा कामायनी का मूल आधार है, इसी नीव के ऊपर उसका भव्य भवन खड़ा हुआ है, यही कामायनी की प्रधान मंदाकिनी है जो अपनी अबाध गति से बहती हुई आनन्द-समुद्र में मग्न होती है। बीच बीच में जिस प्रकार अनेक छोटे छोटे नाले तथा सोते धारा-प्रवाह में योग देते हुए उसे सम्पन्न बनाते चलते हैं, उसी प्रकार कामायनी की इस प्रधान कथा में अन्य छोटी छोटी आध्यात्मिक कथाएँ मिलती चली गई हैं। वे इससे अलग नहीं, वरन् सहकारिणी होकर आई हैं। जीवन क्या है? सुख-दुःख क्या वस्तुएँ हैं? जीवन से उनका क्या सम्बन्ध है? मृत्यु क्या है? प्रकृति क्यों नवीनता की भूखी रहती है? हमारे हृदय में देवासुर संघर्ष क्यों होता रहता है? आदि प्रश्नों के समुचित उत्तर प्रसादजी ने हमको कामायनी में दिये हैं।

उनके लिए जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर नहीं। उनमें जल-तरंग न्याय अथवा कनक-कुण्डल न्याय का सम्बन्ध है—

चेतन समुद्र में जीवन लहरों सा विखर पड़ा है,
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना निर्मित आकार खड़ा है।

जिस प्रकार जल में उठी हुई लहरें थोड़ी देर के लिए उठकर फिर उसी में विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार जीवन भी मृत्यु के अंधकार के प्रवाह में विजली की भाँति चमकता हुआ थोड़ी देर वाद उसी में विलीन हो जाता है—

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घनमाला में।
सौदामिनी संधि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।

सुख-दुःख का वड़ा विशद वर्णन हुआ है। कवि के हृदय में इसकी पूर्ण समीक्षा थी और वह इतनी वलवती थी कि वह स्थान-स्थान पर कवि की वाणी से स्फुटित हुई है। कवि सुख का स्वागत नहीं करता। उसी को वह दुःख का कारण मानता है। सुख में तो मनुष्य अंधा हो जाता है। दुःख ही वास्तविकता के साथ उसका आत्मसात् करता है। देवों के निर्बाध विलास को ही कवि ने दुःख का कारण माना है। इसी दुःख-सुख की समस्या को लेकर ग्रंथ का आरम्भ हुआ है—

स्वयं देव थे हम सव तो फिर क्यों न विशृंखल होती सृष्टि ?
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।

सुख के अंधेपन को देखिए—

सुख केवल सुख का वह संग्रह
केन्द्रीभूत हुआ इतना;
छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।

कवि दुःख का आलिंगन करता है। उसी को वह सुख का मूल कारण बताता है और उसी को ईश्वर का वरदान। मनु को श्रद्धा की दी हुई यही प्रथम चेतावनी है—

दुख के उर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान
काम से झिझक रहे हो आज
भविष्यत् से बच कर अनजान

× × ×

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत जाओ इसको भूल।
विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

× × ×

प्रकृति नूतनताप्रिय है। उसमें परिवर्तन अवश्यम्भावी है। उससे दुखी नहीं होना चाहिए। यथार्थ में परिवर्तन ही जीवन है—

प्रकृति के यौवन का श्रृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।
पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक

नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक।

यही प्रकृति की प्रगतिशीलता है। इस प्रगति का रुक जाना ही असौन्दर्य है, भयङ्करी बाँझ स्त्री है। इसी लिए प्रकृति में—

'कर्म का भोग भोग का कर्म' है और
यही 'जड़ का चेतन आनंद' है

इड़ा के द्वारा भी प्रसाद जी ने सुख-दुख की व्याख्या कराई है। उनके विचार में सुख ही बढ़ जाने पर अथवा समरसता खो जाने पर दुःख बन जाता है—

अपना हो या औरों का सुख
बढ़ा कि बस दुख बना वहीं।
कौन बिन्दु है रुक जाने का
यह जैसे कुछ ज्ञात नहीं।

प्राणी निज भविष्य-चिन्ता में,
वर्तमान का सुख छोड़े।
दौड़ चला है बिखराता-सा,
अपने ही पथ में रोड़े॥

रात में तारागणों को चमकते देखकर भी कवि को भय हो जाता है कि इस रात की हँसी से क्रोध कर प्रकृति कहीं फिर प्रलय न मचा दे, अतः वह उसे इस प्रकार हँसने से रोकता है—

विकल खिलखिलाती है क्यों तू?
इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर,
तुहिन-कणों फेनिल लहरों में
मच जावेगी फिर अंधेर।

अन्यत्र भी

सुख को सीमित कर अपने में,
केवल दुख छोड़ोगे।
इतर प्राणियों की पीड़ा लख,
अपना मुँह मोड़ोगे!

यही सुख की समरसता प्रसाद जी के 'एक घूँट' नाटक का भी मूल तत्त्व है। देव-दानव युद्ध को कवि हमारे मनोगत भावों का द्वंद्व समझता है। कुछ भाव तो वे हैं जो अपूर्ण अहंकार रूप हैं और दूसरे वे जो स्थूल शरीर के पूजक हैं—

देवों की विजय दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा।
संघर्ष सदा उर अन्तर में,
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।

× × × ×

था एक पूजता देह दीन
दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण
दोनों का हठ था दुर्निवार दोनों ही थे विश्वास-हीन
फिर क्यों न तर्क को शस्त्रों से वे सिद्ध करें क्यों हो न युद्ध
उनका संघर्ष चला अशांत वे भाव रहे अब तक विरुद्ध।

कवि की पहुँच मनुष्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोविकारों तक होती है। इसी लिए विद्वानों का कहना है कि मनोविज्ञान के ग्रंथों का अध्ययन उतना लाभकारी नहीं जितना कवि की वाणी का अनुसरण। प्रसादजी ने भी अपनी पहुँच ऐसे मनोविकारों तक दिखलाई है।

लज्जा, काम, वासना, चिन्ता आदि के वर्णन में कवि ने अपनी इस सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त एक

और मनोवैज्ञानिक तत्त्व का सजीव चित्रण देखिए। मन में जब कोई विचार पक्का हो जाता है तब मनुष्य समस्त तर्कों तथा युक्तियों से उसी सत्य की सत्ता स्थापित करता रहता है। उसे प्रत्येक स्थान में उसी की गंध आती है—

मन जब निश्चित-सा कर लेता
कोई मत है अपना,
बुद्धि दैव बल से प्रमाण का
सतत निरखता सपना।
पवन वही हिलकोर उठाता
वही तरलता जल में,
वही प्रतिध्वनि अन्तरतम की
छा जाती नभ तल में।
सदा समर्थन करती उसको
तर्क-शास्त्र की पीढ़ी,
ठीक यही है सत्य! यही है,
उन्नति सुख की सीढ़ी॥
और सत्य! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है,
मेधा के क्रीडा-पंजर का
पाला हुआ सुआ है।
सब बातों में खोज तुम्हारी
रट-सी लगी हुई है
किन्तु स्पर्श के तर्ककरों से
बनता छुईमुई है॥

कामायनी के अध्यायों का क्रम तथा उनमें वर्णित भावों की सहचारी भावनाओं का वर्णन भी बहुत वैज्ञानिक रूप से हुआ है। मनु की चिन्ता से काव्य प्रारम्भ होता है। देव-सृष्टि के विनाश के

कारण उनको चिंता होती है। बुद्धि, मनीषा, मति, आशा इसी चिन्ता के नाम हैं। चिन्ता में भी कभी उन्हें प्राचीन वैभव का स्मरण होता है और कभी वर्तमान पर क्षोभ होता है। कभी शंका, कभी अवसाद और कभी निराशा होती है। इसके बाद चिंता अपने अंतिम स्वरूप आशा में परिवर्तित हो जाती है। कवि के मतानुसार सुख-दुख का चक्र घूमा करता है अतः चिन्ता के बाद आशा का होना स्वाभाविक ही है। आशा में प्रकृति प्रसन्न दिखाई पड़ती है। मन में अब 'मैं हूँ' और 'मैं रहूँ' की भावना जागरित होती है। यह आत्म-अस्तित्व की भावना आशा का प्राण है। इसी आशा से प्रेरित होकर मनु कर्म भी करने लगे। मन भी इसी प्रकार आशा की प्रेरणा से कर्म में अनुरक्त होता है। इसी आशा में कल्पनाएँ भी उत्पन्न होती हैं। इसी अवस्था में श्रद्धा की वाणी उनको सुनाई देती है। वह उनको कर्म में प्रवृत्त करना चाहती है पर काम 'काममय' वासना आकर बीच में उत्पन्न हो जाती है। इसी काममय वासना के साथ मनु कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इसी कारण उनको ईर्ष्या उत्पन्न होती है। वे श्रद्धा के पशु से भी डाह करने लगते हैं। उनको अपने अधिकार की भावना भी सताने लगती है। उनको अतृप्ति भी घेर लेती है, सन्देह होता है। लज्जा नारी का भूषण होने के कारण श्रद्धा में ही दिखाई गई है और श्रद्धा मनु का भावात्मक स्वरूप होने के कारण लज्जा मन की भावात्मिका वृत्ति हुई। इसके पश्चात् मनु कर्म में प्रवृत्त होते हैं। सोमलता कर्म का प्रतीक है। उनका कर्म 'नव अभिलाषा', आशा, 'उत्साह' आदि भावों से प्रेरित होकर चल रहा है। असुर-प्रवृत्तियाँ कर्म में आकुलि और किलात के रूप में उत्पन्न होती हैं। इसका कारण था श्रद्धा का असहयोग। इस असुर-कर्म से उनके हृदय में अशांति रहती है जिसे वे सोमपान से पूरा किया करते हैं। इधर

कामायनी की अपने भावी पुत्र के कर्म में अनुरक्ति और अपनी ओर विरक्ति देख कर मनु को फिर ईर्ष्या होती है और वे उसे छोड़ कर इड़ा के यहाँ चले जाते हैं। यही मनु का बुद्धिवाद का अनुसरण है। इस बुद्धिवाद में मनु को शान्ति नहीं मिलती। उनके मन में अनेक विचारों का संघर्ष होता है। उनका तथा उनकी प्रजा का संघर्ष इसी बुद्धिवाद का प्रतीक है। अन्त में श्रद्धा को पुनः प्राप्त कर उनको निर्वेद होता है और कामायनी की सहायता से उनके हृदय में चिर रहस्य का उद्घाटन होता है, जो आनन्द में जाकर पूर्णता को प्राप्त करता है। इस प्रकार कवि मन के दोनों पक्षों का संघर्ष दिखाता हुआ, उनका समन्वय कर आनन्द की सृष्टि करता है। इसी विकास को दिखाने का 'आमुख' में कवि ने संकेत किया है। इस प्रकार कामायनी की कथा समासोक्ति का भी रूप धारण करती है।

महाकाव्य की दृष्टि से

हमारे साहित्य-शास्त्र में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं—उसकी कथा कोई ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण घटना होनी चाहिए। कथा का प्रवाह निर्बाध, उसकी घटनाएँ सम्बद्ध तथा उसका प्रबन्ध-निर्वाह अविच्छिन्न होना चाहिए। उसका कार्य महान् होना चाहिए। उसमें अनेक रसों का समावेश होना चाहिए। अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों का उसमें वर्णन होना चाहिए। संध्या, प्रभात तथा ऋतुओं का वर्णन भी उसमें होता है। कथा अनेक सर्गों में बँटी हुई होनी चाहिए। इस दृष्टि से कामायनी महाकाव्य है। उसकी कथा बड़ी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। उसकी ऐतिहासिकता दूसरे अध्याय में दिखाई जा चुकी है। कथा में भी प्रबन्ध-निर्वाह है। उसके भिन्न-भिन्न अंश एक ही प्रबन्ध-सूत्र में बद्ध हैं; और एक महान् कार्य 'आनन्द' में पर्यवसान करने को अग्रसर होते हैं। कामायनी का नायक मनु मानवी संस्कृति का प्रतिष्ठाता है; हमारे मन्वन्तर का प्रवर्त्तक है। वेदों तथा ब्राह्मणों में उसकी महिमा गाई गई है। प्रकृति-वर्णन तो अत्यन्त सुन्दर हुआ है। प्रलय-वर्णन से ही ग्रन्थ प्रारम्भ होता है। फिर प्रभात, सन्ध्या, पहाड़, युद्ध आदि के यथास्थान प्रसंगवश बड़े सुन्दर वर्णन हुए हैं। लज्जा, ईर्ष्या, वासना, निर्वेद आदि भावों का तो इसमें समावेश है ही, साथ ही शृङ्गार, वीर तथा अद्भुत रस की भी इसमें अभिव्यक्ति है। हृदय को रमानेवाले तथा मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति को सन्तुष्ट करनेवाले अनेक प्रसंग हैं। अगले अध्यायों में महाकाव्य के इन तत्त्वों का विवेचन कुछ विस्तार के साथ करना आवश्यक है।

प्रबन्ध-निर्वाह

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में दो प्रकार के प्रबन्ध काव्य पाये जाते हैं। एक तो वे हैं जो किसी महान् व्यक्ति के जीवनवृत्त से सम्बन्ध रखते हैं। उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक की मुख्य मुख्य काव्योचित घटनाओं का उनमें वर्णन होता है। दूसरे प्रकार के काव्य घटना-मूलक होते हैं। किसी विशेष फल को प्राप्त करने का नायक उद्योग करता है। जब वह फल प्राप्त हो जाता है तब उस ग्रन्थ की भी समाप्ति हो जाती है। पद्मावत का कथानक दूसरे प्रकार का प्रबन्ध-काव्य है। पद्मिनी के सती होने पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। केशव की रामचन्द्रिका तथा कालिदास का रघुवंश पहले प्रकार के प्रबन्ध काव्यों में से हैं। कामायनी का प्रबन्ध दूसरे प्रकार का है। इसमें मनु के जीवन का उल्लेख नहीं है, वरन् उनके जीवन की एक प्रधान घटना का है। उनका हृदय आनन्द की खोज में बेचैन है। शांति से वह संतुष्ट नहीं है। शांति तो अभाव-सूचक शब्द है। उनकी सब चेष्टाएँ इसी आनन्द की ओर अग्रसर हैं। श्रद्धा के प्रथम सम्पर्क तथा सहवास में वे सदैव इसी की अभिलाषा करते हैं। श्रद्धा उनको इस आनन्द के मूल 'विश्वप्रेम' का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करती है। पर मनु अपने प्राचीन संस्कारों के प्राबल्य के कारण उसे नहीं सीख पाते। श्रद्धा की बातों के अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। और इसी आनन्द की खोज में इड़ा के सारस्वत प्रदेश में जा पहुँचते हैं। इड़ा से मिलते समय भी वे यही प्रश्न करते हैं कि हे देवि! मुझे इस जीवन का मूल्य बता दो। सृष्टि क्या केवल इन्द्रजाल है, उसमें क्या विनाश का ही क्रम सत्य है? क्या इस विनाशकारी, दुःखपूर्ण विश्व में सुख तथा आनन्दप्रदायिनी कोई शक्ति नहीं?

मैं तो आया हूँ देवि! बता दो जीवन का क्या सहज मोल,

भव के भविष्य का द्वार खोल। इस विश्व कुहर में इन्द्रजाल
जिसने रचकर फैलाया है ग्रह तारा विद्युत नखत माल,
सागर की भीषणतम तरंग-सा खेल रहा वह महाकाल।
तब क्या इस वसुधा के लघु लघु प्राणी को करने को सभीत,
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश की रही जीत,
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि, उसे जो नाशमयी।
उसका अधिपति! होगा कोई, जिस तक दुख की न पुकार गयी।
सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल
किसने यह पट है दिया डाल शशि का सुदूर वह नील लोक,
जिसकी छाया-सा फैला है ऊपर नीचे यह गगन शोक,
उसके भी परे सुना जाता कोई प्रकाश का महाओक।
वह एक किरन अपनी देकर मेरी स्वतंत्रता में सहाय,
क्या बन सकता है? नियति-जाल से मुक्तिदान का कर उपाय।

मनु इड़ा से आत्मबल तथा ज्ञान-विज्ञान का उपदेश पाकर प्रजापति बनते हैं, राज्य की स्थापना करते हैं; कृषि, दस्तकारी तथा वाणिज्य की वृद्धि करते हैं। अन्त में इससे भी असंतोष होता है और श्रद्धा की सहायता से आनन्दलोक का दर्शन करते हैं। यहीं पर ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है। यही आनन्द की प्राप्ति साहित्यशास्त्र में 'कार्य' कहलाता है।

इस प्रकार के कथानक के, फलप्राप्ति के अवस्थानुसार, प्राचीनों ने पाँच भेद किये हैं। आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम। कथा के आरम्भ होने के बाद नायक फलप्राप्ति की चेष्टा करने लगता है। यही यत्न है। उसके पश्चात् फलप्राप्ति की आशा होने लगती है। नियताप्ति में वह फल और निकट आ जाता है और फलागम में वह प्राप्त हो जाता है। यह फल ही कथावस्तु का कार्य्य

है। आरम्भ तथा यत्न क्रमशः कथा की अर्थप्रकृति के अनुसार बीज तथा बिन्दु कहलाते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसी प्रकार कथा के पाँच भेद किये हैं। उनके यहाँ जीवन का संघर्ष अधिक है, अतः काव्य में भी उसी ने स्थान पाया है। इसी संघर्ष का प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, अपकर्ष तथा अन्तिम परिणाम हमारे यहाँ के कथानक के पाँच भेदों के अनुरूप हैं। जिस प्रकार भाषा, व्याकरण की अनुगामिनी नहीं हो सकती वरन् भाषा के विकास के पश्चात् ही उसमें नियमन स्वरूप में पाई गई विशेष प्रवृत्तियों का उल्लेख व्याकरण करता है, उसी प्रकार कथानक की ये बातें बाद में लोगों ने अच्छे अच्छे कथानकों को देखकर निकाली हैं। पर जिस प्रकार अच्छी तथा शुद्ध भाषा में व्याकरण के ये नियम पाये जाते हैं उसी प्रकार अच्छे कथानक में भी ये भाग पाये जाते हैं। लिखते समय कवि के ध्यान में इन सब की आवश्यकता नहीं। ध्यान रखने से कदाचित् वह खूबी भी न आने पावे।

विवेचना के सुभीते के लिए कामायनी की कथा में इन पाँचों भागों को हम देखेंगे। मनु की चिन्ता तथा उनके हृदय में आशा का उदय होना कथा का आरम्भ है। उसका बीज यही है। श्रद्धा के साथ उनका मिलना, उनका पारस्परिक समर्पण, श्रद्धा के साथ उनका सहवास, यज्ञकार्य, इड़ा का मिलना तथा राज्य-स्थापना यत्न है। यह कथा का बिन्दु है। फिर श्रद्धा का मनु की खोज में जाना तथा उनसे मिलना और मनु को श्रद्धा का आश्वासन उनकी सहायता प्राप्त्याशा है। श्रद्धा का मनु की खोज में जाना तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों लोकों के दर्शन कराना नियताप्ति है और इन तीनों का समन्वय, मनु का आनन्द में निमग्न होना तथा उनका लोक-सेवा में रत हो जाना फलागम है। यही इस ग्रंथ का कार्य है।

कामायनी की कथा में ये पाँचों भाग अलग-अलग पाये जाते हैं, पर उनका सापेक्ष्य ठीक नहीं है। आरंभ तथा यत्न का अंश

अत्यधिक लम्बा है उसमें कथा-प्रवाह बहुत धीमा है। कहीं कहीं तो उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। इसका एक कारण कदाचित् यह है कि ग्रन्थ का भौतिक-आधार बहुत कम है। मानसिक विकारों का ही उसमें संघर्ष अधिक है। किसी विचार को हृदयंगम करने के पहले बड़ा सोच विचार करना पड़ता है, अनेक प्रकार के भावों से लड़ना पड़ता है, तब अन्त में उसकी अनुभूति होती है। यहाँ पर भी अनुभूतियों तथा विकारों एवं रागों की इसी लड़ाई के प्रदर्शन में ही ग्रन्थ का आरम्भिक भाग लग गया है। परन्तु काम, वासना, लज्जा, कर्म तथा ईर्ष्या वाले सर्गों में कथा की धारा बड़ी तीव्र गति से बढ़ती हुई आनंद-सागर में मिल जाती है। कथा के इन अंगों का कुछ अधिक सापेक्षिक विस्तार वाञ्छनीय था।

कथावस्तु में दूसरी बात और देखनी है। वह है इति-वृत्तात्मक तथा रसात्मक प्रकरणों का समन्वय। (कथा का एक अंश तो वह है जिसमें घटनाओं का साधारण वर्णन करती हुई तथा हमारी जिज्ञासावृत्ति को सन्तुष्ट करती हुई कथा आगे बढ़ती चली जाती है।) दूसरा अंश कथा का वह है जहाँ कथा कुछ देर के लिए रुक जाती है। कवि ऐसे स्थलों पर जाकर हमारी रागात्मिकावृत्ति की तुष्टि करने में लग जाता है। वह हमारे हृदय में स्थायी भावों तथा रसों की अभिव्यक्ति करता है। कवि को ऐसे स्थलों को बड़ी सावधानी के साथ चुनना पड़ता है। ऐसे स्थल वही होने चाहिए जो साधारण मनुष्य के हृदय में भी प्रेम, क्रोध, उत्साह, आदि तीव्र भावों का उदय करते हों। यथार्थ में ऐसे ही स्थल काव्य के प्राण हैं। ऐसे स्थल न पहिचानने के कारण केशवदास ने रामचन्द्रिका में अपनी हृदयहीनता का परिचय दिया है। तुलसीदास जी ने उन्हें पहिचाना है। रामजन्म, उनका

विवाह, वनगमन, चित्रकूट में भरतमिलाप, लक्ष्मण को शक्ति लगना, अयोध्या में भरतमिलाप आदि ऐसे ही मर्मस्पर्शी स्थल हैं। वास्तव में इतिवृत्त का कार्य पाठकों को उन घटनाओं तक ले पहुँचाना ही है। जो इतिवृत्ति इसमें देर लगाता है अथवा अनावश्यक बातों के वर्णन में लग जाता है वह अरुचिकर हो जाता है। अच्छे वर्णन न देनेवाले व्यक्ति से यह बहुधा कहते हुए आपने सुना होगा, "अजी छोड़ो भी इन बेकार बातों को; आगे बढ़ो; असली बात पर आओ।" यह असली बात ही वे रागात्मक स्थल हैं जिनको पाठक अथवा श्रोता चाहते हैं, जिसके लिए वे उस काव्य को पढ़ते हैं, किसी कहानी को सुनते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी वर्णन में पात्रों के सब कार्य नहीं दिखाये जा सकते। कुछ कार्य तो काव्योपयोगी ही नहीं होते और काव्योपयोगी वृत्तों का भी आवश्यकतानुसार संकोच तथा विस्तार करना पड़ता है। अतः कवि का कर्म यह है कि वह अनुभव करे कि उसे किन घटनाओं का विस्तार करना है और किनका संकोच। कोई आवश्यक बात छूटने भी न पावे, किसी विशेष बात के वर्णन में विराम भी न होने पावे और अनावश्यक बात भी उसमें न आने पावे। यदि कोई उपकथाएँ हों तो वे सब उस कार्य के सम्पन्न कराने में सहयोग देती हुई हों। कवि का काम चित्रकार का है, फोटोग्राफर का नहीं।

इस दृष्टि से यदि हम कामायनी की समीक्षा करें तो उसमें हम इतिवृत्तात्मक प्रसंगों का अभाव सा ही पावेंगे। 'आगे चले बहुरि रघुराई' अथवा 'तब लगि मोहि परखिहउ भाई, सहि दुख कंद मूल फल खाई। जब लगि आवौं सीतहिं देखी, होइ काज मोहि हर्ष विशेषी।' वाले प्रसंग उसमें हैं ही नहीं। प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ कवि मनु की मानसिक परिस्थिति का

चित्रण करता जाता है तथा रसात्मक प्रकरणों का पाठकों रसास्वादन कराता चलता है । भाव-वर्णन तथा प्रकृति-चित्र के इन प्रसंगों को यदि हम निकाल लें तो रंगभूमि में खेले जाने वाले दृश्यों के समान कथा खंडों में बँट जायगी । पर कवि ने इस चातुर्य से इन खंडों को कथा के सूत्र में पिरोया है कि पाठकों को उनके जोड़ने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती और न कथा ही टूटी मालूम होती है । इस प्रकार इस श्रव्य-काव्य में नाटककार 'प्रसाद' ने दृश्य-काव्य का भी आनन्द मिला दिया है ।

मर्मस्पर्शी स्थल भी कामायनी में कितने ही हैं । देव-वैभव के नाश के संस्मरण, श्रद्धा तथा मनु का प्रथम प्रेम, श्रद्धा का वियोग, श्रद्धा का पुत्र के लिए स्नेह, मनु का युद्ध तथा उनका घायल होना आदि ऐसे ही प्रसंग हैं । इन स्थलों का वर्णन कर कवि ने अपनी सहृदयता दिखाई है । दैवी पात्रों में मानव-हृदय दिखाया है, उनका मानवीकरण किया है, जिससे ग्रन्थ को बार-बार पढ़ने की रुचि बढ़ती जाती है । इन वर्णनों में कवि कहाँ तक सफल हुआ है, यह तो हम आगे चलकर देखेंगे, पर यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि कामायनी की कथा के साथ उनका पूरा समन्वय है ।

कामायनी की कथा में कुछ दैवी घटनाएँ भी सम्मिलित हैं । काम तथा लज्जा दो तो ऐसे पात्र हैं जो रंगमंच पर नहीं आते । नेपथ्य से ही बोलते हैं । काम तो दो बार आता है । एक बार तो वह स्वप्न में मनु को श्रद्धा के ग्रहण करने का उपदेश तथा निर्देश करता है; दूसरी बार श्रद्धा को त्याग देने पर वह मनु को अभिशाप देता है । लज्जा श्रद्धा को अपना प्रेम प्रदर्शित करने में बाधा डालती हुई पाई जाती है । पात्रों का मिलना बड़ा आकस्मिक रूप से होता है । मनु के देवयज्ञ की गंध लेती हुई

गन्धर्वों से गान-विद्या सीखनेवाली कामजा कामायनी ठीक मनु के पास पहुँच जाती है। कान की ट्रेनिङ्ग के साथ उसकी नाक भी ट्रेण्ड हो गई मालूम पड़ती है। श्रद्धा को छोड़ कर मनु भी ठीक सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं, और वहाँ की रानी इड़ा मानों उनके अभिनन्दन को नगर के प्रान्तभाग में पहले से ही आकर खड़ी हो गई है। श्रद्धा का स्वप्न और स्वप्न पर उसका एकदम काम प्रारम्भ कर देना तथा ठीक नाक की सीध में मनु तथा इड़ा के पास पहुँच जाना भी कम आकस्मिक नहीं है। इसी प्रकार दूसरी बार भी श्रद्धा पहाड़ की कन्दराओं में तप करते हुए मनु को इस प्रकार खोज लेती है, मानो वह स्वयं ही वहाँ उन्हें बैठा आई हो और अन्त में इसी प्रकार मानव तथा इड़ा, श्रद्धा एवं मनु के पास पहुँच जाते हैं।

साधारण दृष्टि से तो ये घटनाएँ अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं, पर यह समझ लेने से कि इन सबके पीछे इनका सूत्रधार ईश्वर ही सब कार्यों का कर्त्ता है, इन घटनाओं की आकस्मिकता चली जाती है। 'प्रसाद जी' को ऐसी दैवी तथा आकस्मिक घटनाओं को दिखाने का शौक सा है। इनके नाटकों में भी यह बात पाई जाती है। जब कुछ संकट आता है तभी कोई न कोई व्यक्ति एकदम आविर्भूत होकर उसका निवारण कर देता है। स्कन्दगुप्त नाटक में कई बार ऐसा ही हुआ है। कभी-कभी तो बिलकुल पता नहीं चलता कि वह उद्धारक कहाँ से और कैसे आ गया और कहाँ चला गया। यों तो संसार में कभी कभी ऐसी घटनाएँ हो भी जाती हैं पर नियमित रूप से इनका समावेश प्रसाद जी का ईश्वर की नियामकता में दृढ़ विश्वास प्रकट करता है।

वर्णित विषय का बिना वर्णन किये कथावस्तु का वर्णन समाप्त नहीं हो सकता। जीवन में आनंद की खोज और

उसकी प्राप्ति ही कामायनी का विषय है। आनन्द की उपलब्धि ही कार्य है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कार्य महान् है। पाश्चात्य विचारों का अनुसरण करनेवाले लोगों ने 'कला कला के लिए' वाले सिद्धान्त के मनमाने अर्थ लगाकर आलोचना-क्षेत्र में बड़ी गड़बड़ी फैला दी है। उनके अनुसार काव्य का विषय चाहे कितना ही तुच्छ हो, उसकी कला-पूर्ण अभिव्यक्ति हो जानी चाहिए; उस विषय का जीवन से चाहे कुछ सम्बन्ध न हो। यह मत भ्रामक है। कला जीवन से दूर नहीं जा सकती। यही नहीं, काव्य का विषय स्वयं कला को कलित कर देनेवाला होना चाहिए; यद्यपि छोटे से छोटे विषयों को भी कला सुन्दर रूप प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान् तथा कलाविद् मैथ्यू आरनॉल्ड का कथन है, "Nor do I deny that the poetic faculty can and does manifest itself in treating the most trifling action, the most hopeless subject. But it is a pity that power should be ecompelled to import interest and force, instead of receiving them from it and thereby doubling its impressiveness." इस कवि के अनुसार विषय से कला का सौन्दर्य बढ़ाना चाहिए और इस प्रकार उस कला के प्रभाव को द्विगुणित कर देना चाहिए।

दूसरी बात इस सम्बन्ध में यह देखनी चाहिए कि कथावस्तु की सब घटनाएँ उस कार्य की संपन्नता में सहायक होती हैं अथवा नहीं। श्रद्धा तथा ज्ञान की देवी इड़ा के समन्वय से तो इस आनन्द की प्राप्ति ही होती है। युद्ध से मनु को वह निर्वेद होता है जो उन्हें इस आनन्द की खोज में अत्यधिक सचेष्ट करता है। किलात आकुलि का प्रसंग इस सम्बन्ध में विचारणीय है। पर जैसा पहले कहा जा चुका है कि ये राक्षस एक तो ऐतिहासिक व्यक्ति हैं,

दूसरे मनुष्य के भीतर भौतिकता, देह-प्रेम तथा देह-पालन के प्रतीक हैं। वे स्वार्थ तथा मोह के भी प्रतीक हैं। उनके द्वारा प्रजा के विप्लव का नेतृत्व स्वाभाविक है तथा आनन्द-साधना के लिए उनका नाश होना भी अनिवार्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा की अन्विति सब प्रकार से पूर्ण है।

भाव-वर्णन

जैसा पहले कहा जा चुका है, कामायनी भाव-प्रधान काव्य है। अतः इसमें मनु तथा कामायनी के हृदयस्थ भावों का जितना चित्रण हुआ है उतना उनके कार्यों का नहीं। कार्यों के प्रेरक भाव ही होते हैं। जेम्स लैंग की यह धारणा कि पहले कार्य होते हैं और उनसे सम्बन्धित भाव पीछे उदित होते हैं, उचित नहीं। उनके अनुसार रोमाञ्च होना, कम्प होना, भागना पहले प्रारम्भ होता है और भय पीछे लगता है, परन्तु यह ठीक नहीं; क्योंकि एक ही वस्तु विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न भाव उत्पन्न करती है और एक ही कार्य विभिन्न कारणों (मूलस्थ भावनाओं) द्वारा होता है। मनुष्य सिंह के पीछे आखेट के समय उत्साह से दौड़ता है; रक्षा का उपाय न देख कर उसके सामने भय से दौड़ता है। प्रेमोन्मत्त व्यक्ति अपनी प्रेयसी के पीछे रति के कारण दौड़ता है। अतः भावना ही प्रधान है। कामायनी का महत्त्व इसी में है कि उसमें इन्ही भावों का चित्रण हुआ है। चिंता, आशा, ईर्ष्या (असूया), रति आदि भाव मनु के हृदय में जागरित होते हैं पर इनसे उनकी तुष्टि नहीं होती और वे चिर-शांति की खोज में उद्विग्न रहते हैं और उसे प्राप्त करते हैं।

यह शांत रस की अभिव्यक्ति और स्थापना ही कामायनी का भावात्मक विषय है। निर्वेद शांति-रस का स्थायी भाव है। मनु के हृदय में शांति की खोज का प्रश्न तो सुपुप्त अवस्था में वर्तमान है, क्योंकि जब मनु इड़ा के पास आये थे तब उन्होंने यही पूछा था—

मैं तो आया हूँ देवि ! बता दो जीवन का क्या सहज मोल
भव के भविष्य का द्वार खोल।

× × ×

शनि का सुदूर वह नील लोक
जिसकी छाया से फैला है ऊपर नीचे यह गगन शोक
उसके भी परे सुना जाता कोई प्रकाश का महाओक
वह एक किरन अपनी देकर मेरी स्वतंत्रता में सहाय
क्या बन सकता है ? नियति जाल से मुक्तिदान का कर उपाय।

इड़ा के आदेश से मनु राज्य की स्थापना करते हैं परन्तु अन्त में जब उनको जीवन के मोल का पता नहीं लगता और स्वतंत्रता भी नहीं मिलती वरन् वे स्वयं घायल हो जाते हैं, तब उन्हें निर्वेद होता है।

उनके निर्वेद के मूल में इस आनन्द की उत्सुकता है। अपनी असफलता के कारण उन्हें ग्लानि, शोक तथा जुगुप्सा होती है ये संचारी भाव ही निर्वेद के स्थायी भाव की पुष्टि करते हैं निम्नांकित एक ही पद में ग्लानि, शोक, जुगुप्सा तथा शंक आदि संचारी भावों की व्यञ्जना हुई है—

श्रद्धा ! तू आ गई भला तो
पर क्या मैं था यहीं पड़ा।
वही भवन, स्तम्भ, वेदिका !
बिखरी चारों ओर वृणा।
आँख बन्द कर लिया क्षोभ से
दूर दूर ले चल मुझको।
इस भयावने अंधकार में
खो दूँ कहीं न फिर तुझको।

ये भाव मनु के हृदय में निर्वेद उत्पन्न करते हैं। उनके निर्वेद में केवल ग्लानि ही नहीं है वरन् उसमें उत्साह तथा क्रियात्मकता

है। इसी कारण यहाँ निर्वेद स्थायी होकर आया है, संचारी होकर नहीं।

निर्वेदविषये स्थायी तत्त्वज्ञानोद्भवः स चेत्।
इष्टानिष्टवियोगाप्तिकृतस्तौ व्यभिचार्यसौ ॥

—भक्तिरसामृतसिंधु

अर्थात् निर्वेद जब तत्त्व-ज्ञान से उत्पन्न होता है तब वह स्थायी माना जाता है। जब निर्वेद इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट-प्राप्ति से होता है तब वह व्यभिचारी कहा जाता है।

यहाँ पर यद्यपि तत्त्वज्ञान अथवा रहस्यात्मक अनुभूति नहीं हुई पर उनकी उत्कंठा ने उसमें स्थायित्व उत्पन्न कर दिया है। श्रद्धा ने उसमें उद्दीपन का कार्य किया है। निर्वेद का स्वरूप देखिए—

जल पीकर कुछ स्वस्थ हुए से
लगे बहुत धीरे कहने—
'ले चल इस छाया के बाहर
मुझको दे न यहाँ रहने
मुक्त नील-नभ के नीचे या
कहीं गुफा में रह लेंगे,
अरे झेलता ही आया हूँ
जो आवेगा सह लेंगे।'

अद्भुत रस शान्त रस का सहायक तथा मित्र है। भावलोक, मलोक तथा ज्ञानलोक का वर्णन एवं हिमालय पर्वत की ँचाई का उदात्त वर्णन बड़ा आश्चर्यपूर्ण है और अद्भुत रस की द्भावना कर शान्त रस की स्थापना में सहायक होता है। रहस्य र्ग के वर्णन रहस्यात्मक हैं और अद्भुत रस की सृष्टि रते हैं—

दे अवलम्ब विकल साथी को
कामायनी मधुर स्वर बोली;
"हम बढ़ दूर निकल आये अब
करने का अवसर न ठिठोली।

दिशा विकम्पित पल असीम है
यह अनन्त-सा कुछ ऊपर है;
अनुभव करते हो बोलो क्या
पदतल में सचमुच भूधर है?

निराधार है किन्तु ठहरना
हम दोनों को आज यहीं है
नियति खेल देखूँ न सुनो अब
इसका अन्य उपाय नहीं है।

झाँई लगती जो वह तुमको
पर उठने को है कहती,
इस प्रतिकूल पवन धक्के को
झोंक दूसरी ही आ सहती।

श्रांत पक्ष कर नेत्र बंद बस
विहग युगल से आज हम रहें,
शून्य पवन बन पंख हमारे
हमको दें आधार जम रहें।

इस प्रकार पवन-पंखों के सहारे अधर में ठहरे हुए मनु एवं श्रद्धा का वर्णन तो आश्चर्यपूर्ण है ही; साथ ही तीनों लोकों का वर्णन भी बड़ा अद्भुत हुआ है, यद्यपि कवि ने इनके वर्णन में सब बातें यथार्थ ही बतलाई हैं। मनुष्य के मानसिक संस्थान के तीन रूपों इच्छा (भाव), ज्ञान तथा क्रिया का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है कि उनका मूर्त स्वरूप हमारे सामने रखते

हुए भी आश्चर्य का समावेश कर दिया है। उनको देखते ही मनु घबरा गये—

त्रिदिक विश्व आलोक बिन्दु भी
तीन दिखाई पड़े अलग वे,
त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानों
वे अनमिल थे किन्तु सजग थे।

मनु ने पूछा—कौन नये ग्रह
ये हैं, श्रद्धे! मुझे बताओ,
मैं किस लोक बीच पहुँचा, इस
इन्द्र-जाल से मुझे बचाओ

श्रद्धा मनु को आश्वासन देकर तीनों लोकों का दर्शन कराती है—

भावलोक

यह देखो रागारुण है जो
ऊषा के कंदुक-सा सुन्दर;
छायामय कमनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मंदिर।

शब्द स्पर्श रस रूप गंध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ
चारों ओर नृत्य करतीं ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ।

इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में;
इठलाती सोतीं जगतीं ये
अपनी भाव भरी माया में।

वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी
कोमल अँगड़ाई है लेती;
मादकता की लहर उठाकर
अपना अंबर तर कर देती।

आलिङ्गन-सी मधुर प्रेरणा
छू लेती फिर सिहरन बनती
नव अलम्बुषा की ब्रीडा-सी
खुल जाती है फिर जा मुँदती।

× × ×

सुमन संकुलित भूमि रंध्र से
मधुर गंध उठती रस-भीनी
वाष्प अदृश्य फुहारे इसमें
छूट रहे, रस-बूँदें भीनी।

घूम रही है यहाँ चतुर्दिक
चलचित्रों-सी संसृति छाया
जिस आलोक-बिंदु को घेरे
वह बैठी मुसकाती माया।

भावलोक की उपमा सिनेमा-पट से देकर कवि ने हमारे सामने कितना सुन्दर चित्र खड़ा किया है। इसी प्रकार क्रमशः कर्मलोक तथा ज्ञानलोक का दर्शन कामायनी ने मनु को कराया—

कर्मलोक

मनु यह श्यामल कर्मलोक है
धुँधला कुछ कुछ अंधकार-सा,
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धूम धार-सा।

कर्म चक्र-सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा।

× × ×

करते हैं सन्तोष नहीं है
जैसे कशाघात प्रेरित से—
प्रतिक्षण करते ही जाते हैं
भीति-विवश ये सब कंपित-से।

× × ×

यहाँ सतत संघर्ष, विफलता
कोलाहल का यहाँ राज है,
अंधकार में दौड़ लग रही
मतवाला यह सब समाज है।

× × ×

वर्षा के घन नाद कर रहे
तट कूलों को सहज गिराती।
प्लावित करती वन कुञ्जों को
लक्ष्य-प्राप्ति सरिता बह जाती।

ज्ञानलोक

और यहाँ के निवासी

अपना परिमित पात्र लिये ये
बूँद बूँद वाले निर्झर-से,
माँग रहे हैं जीवन का रस
बैठ यहाँ पर अजर अमर-से

उत्तमता इनका निजस्व है
अम्बुज वाले सर सा देखो,
जीवन मधु एकत्र कर रही
उन ममाखियों सा बस लेखो।
यहाँ शरद की धवल ज्योत्स्ना
अंधकार को भेद निरखती
यह अनवस्था, युगल मिले से
विकल व्यवस्था सदा बिखरती।

उनका सम्बद्ध होना भी कम आश्चर्यपूर्ण नहीं है—

महा ज्योति रेखा-सी बन कर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिनमें।
नीचे ऊपर लचकीली वह
विषम वायु में धधक रही-सी
महा शून्य में ज्वाल सुनहली
सब को कहती नहीं नहीं-सी।

इन्हीं सब उपकरणों से अन्त में शान्त रस की उद्भावना होती है जिसमें श्रद्धा तथा मनु तन्मय हो जाते हैं और दिव्य अनाहतनाद सुनते हैं।

शान्त रस का वर्णन साहित्य-दर्पण में इस प्रकार किया गया है—

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता, न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः, सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः॥

अर्थात् जहाँ न दुःख है न सुख है, न द्वेष है न मात्सर्य और अह सब भूतों में समान भाव रहता है वह शान्त रस कहा जाता है यही शान्त रस का आनन्द मनु के आश्रम में छाया हुआ है—

मनु ने कुछ मुसका कर
कैलास ओर दिखलाया;
बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।
शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है;
जीवन वसुधा समतल है
सम रस है जो कि जहाँ है।
चेतन समुद्र में जीवन
लहरों सा बिखर पड़ा है;
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना
निर्मित आकार खड़ा है

× × ×

सब भेद भाव भुलवाकर
सुख दुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे! यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।

इसी स्थान पर कवि ने शान्ति के आनन्द का रूप प्रकृति के प्राचुर्य में खड़ा किया है। मधुर गंधवह परिमल, कमल का केसर, मुकुलों की मादकता, कनक-कुसुम-रज; हिम-जल में हेमकूल का दर्शन, वल्लरियों का नृत्य, वेणुरंध्र का स्वर, मधुपगान, वीणा, परिमल-स्नाता काकली, रश्मि-मंडित हिमखंड, अंतरिक्ष में रश्मियों का नाच आदि शांत रस के अनेक उपादान

उपस्थित किये हैं। इस वातावरण में कवि ने अपना आनन्द पाया है। तुलसी के राम भी उसी के हृदय में अपना घर बनाते हैं जो द्वंद्व से मुक्ति पा चुके हों।

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा।
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया।

इस प्रकार शोक, जुगुप्सा आदि संचारी भावों से पुष्ट हुआ निर्वेद का स्थायी भाव श्रद्धा, उसकी बातचीत, हिमालय पहाड़ के सुरम्य दृश्यों आदि विभावों की सहायता से शान्त रस में परिणत होता है। अद्भुत रस की मैत्री से रस की अनुभूति और अधिक तीव्र हो गई है।

शृंगार रस

इस प्रधान रस के अतिरिक्त कामायनी में अन्य रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है। श्रद्धा तथा मनु के प्रेम में संयोग और विप्रलंभ शृंगार दोनों मिलते हैं पर उनका प्रेम एकांगी सा ही रह गया है। मिलकर भी वे मिलने नहीं पाये। जब वे मिलते हैं तो एक दूसरे के रूप से आकृष्ट होते हैं पर वे प्रेम-प्रसंग को बढ़ाने के स्थान पर जीवन की ग्रंथियाँ सुलझाने में लग जाते हैं, अतः यहाँ पर मिलने पर भी रंग में भंग हो जाता है। दोनों के परिचय-प्रश्नों में पारस्परिक आकर्षण है। श्रद्धा का प्रश्न—

कौन तुम ? संसृति जलनिधि-तीर
तरंगो से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक !
मधुर विश्रांत और एकान्त—
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,

एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य।

मनु का प्रश्न—

कौन हो तुम वसन्त के दूत,
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कांत—
कल्पना की लघु लहरी दिव्य,
कर रही मानस हलचल शांत।

पर मनु की सतत जिज्ञासा तथा सत्य की खोज इसमें बाधा पहुँचा देती है। इसके कारण परिचय बढ़ने पर भी उनके बीच का पर्दा नहीं हटा—

नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष;
गूढ़ अन्तर का छिपा रहता रहस्य विशेष।
दूर जैसे सघन वन-पंथ अंत का आलोक;
सतत होता जा रहा हो नयन की गति रोक।

मनु आत्मसमर्पण भी करते हैं—

आज ले लो चेतना का यह समर्पण दान,
विश्व रानी! सुन्दरी नारी! जगत की मान।

इस दान से श्रद्धा लज्जा के कारण नत भी होती है, पर मनु की चिर-वासना फिर उनको देवकर्म में प्रवृत्त कर देती है। उनके हृदय में ईर्ष्या जाग्रत कर जुगुप्सा तथा निर्वेद उत्पन्न कर देती है। परन्तु ग्रंथ की रसान्विति के लिए ऐसा वर्णन स्वाभाविक ही है।

कामायनी के वियोग का वर्णन बड़ा स्वाभाविक तथा सुन्दर हुआ है। यहाँ पर श्रद्धा की भावनाओं का साधारणीकरण हो गया

है। उसका सुख-दुःख मनुष्य मात्र का सुख-दुःख हो गया है। दुखी मनुष्य के हृदय में सुख-दुःख का प्रश्न उठा करता है। से कामायनी का दुख-सुख-सम्बन्धी प्रश्न कितना स्वाभाविक मंदाकिनी है। रामचन्द्र जी भी तो सीता जी का पता खग-मृग सभी से पूछते हैं—

हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।

कामायनी पूछ रही है—

जीवन में सुख अधिक या कि दुख, मन्दाकिनि कुछ बोलोगी!
नभ में नखत अधिक सागर में, या बुद्बुद हैं गिन दोगी!
प्रतिबिम्बित है तारा तुममें, सिन्धु-मिलन को जाती हो
या दोनों प्रतिबिम्ब एक के, इस रहस्य को खोलोगी!

वियोग में स्मृति तथा धैर्य दोनों का कितना स्पष्ट तथा सुन्दर चित्रण हुआ है—

आज सुनूँ केवल चुप होकर, कोकिल चाहे जो कह ले;
पर न परागों की वैसी है, चहल पहल जो थी पहले।
इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की सन्ध्या,
कामायनि! तू हृदय कड़ा कर धीरे धीरे सब सह ले।

भावावेश के कारण भाषा ने कैसा सरल तथा स्वाभाविक रूप ण कर लिया है। 'कामायनि' इस एक शब्द ने भावाभिव्यक्ति न कितनी सहायता दी है। धैर्य धारण करने के लिए बहुधा लोग अपना नाम लेकर बात किया करते हैं। "ऊधौ तुम्हें द्वारिका जानौ" कहावत इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

अकेले में दुखी मनुष्य अपने मन को किसी प्रकार समझा ही लेता है। कामायनी भी समझा रही है—

विनिमय प्राणों का यह कितना भय-संकुल व्यापार अरे !
देना हो जितना दे दे तू लेना ! कोई यह न करे।
परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा पूरी कभी न हो सकती,
संध्या रवि देकर पाती है इधर उधर उडुगन बिखरे।

जब कामायनी ने संयोगिनी वन-बालाओं के लौटते हु प्रियतमों को देखा तो उसका हृदय दुःख से विदीर्ण होने लग अब उसके हृदय का धैर्य जाने लगा। उसके विषाद की व्यंजना कवि ने इस प्रकार की है—

वन-बालाओं के निकुञ्ज सब भरे वेणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आनेवाले सुन पुकार अपने घर से;
किन्तु न आया वह परदेसी, युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिन्दुकण कल बरसे।

'आँसू' के विशेषज्ञ प्रसाद जी इस अवसर पर श्रद्धा के आँसुओं का क्यों न वर्णन करते। हमारे आचार्यों ने भी आँसू को अनुभाव और सात्त्विक भाव की श्रेणी में रक्खा है। मानस के स्मृतिरूपी कमल के मकरन्द स्वरूप आँसुओं का प्रसाद जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—

मानस का स्मृति शतदल खिलता, झरते बिन्दु मरंद घने,
मोती कठिन पारदर्शी ये इनमें कितने चित्र बने।
आँसू सरल तरल विद्युत कण, नयनालोक विरह तम में,
प्राण पथिक यह सम्बल लेकर लगा कल्पना जग रचने।

× × ×

जले दीप नभ के अभिलाषा-शलभ उड़े, उस ओर चले,
भरा रह गया आँखों में जल, बुझी न वह ज्वाला जलती।

यदि कभी प्रेमी रूठकर चला जाय तो वियोग में यह अनुभव होता है कि मेरी ही भूल का यह परिणाम है। यदि समय से

मना लिया होता तो ऐसी स्थिति क्यों आती। प्रेमियों को अपनी भूलों की याद निरन्तर आया करती और उन्हें सताया करती है। प्रेम-पारखी घनानंद की भी यही दशा है—

सुधि करें भूल की सुरति जब आइ जाइ,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।

कामायनी भी अपने विरह में अपनी भूलों की याद करती है—

रूठ गया था अपनेपन से
अपना सकी न उसको मैं,
वह तो मेरा अपना ही था
भला मनाती किसको मैं।
यही भूल अब शूल सदृश हो
साल रही उर में मेरे,
कैसे पाऊँगी उसको मैं,
कोई आकर कह दे रे।

विरह-विधुरा कामायनी की कृशता का वर्णन भी बड़ा स्वाभाविक हुआ है—

इड़ा उठी, दिख पड़ा राजपथ
धुँधली-सी छाया चलती,
वाणी में थी करुण वेदना
वह पुकार जैसे जलती।
शिथिल शरीर वसन विशृंखल
कबरी अधिक अधीर खुली,
छिन्न-पत्र मकरन्द लुटी सी
ज्यों मुरझाई हुई कली।

आगे चल कर जब मनु और श्रद्धा का पारस्परिक प्रेम समप्रेम में परिवर्त्तित हुआ है तब मानवी प्रेम नहीं रहा और न दो

प्राणियों के बीच का प्रेम ही। उस समय यह प्रेम आध्यात्मिक हो गया है और जीव-मात्र का प्रेम हो गया है तथा उसमें समरसता आ गई है।

शृंगार रस के प्रसङ्ग को समाप्त करने के पहले प्रेम के जिन दो-एक चिरंतन शाश्वत तथा सनातन सत्यों का प्रसाद जी ने निर्देश किया है, उनका वर्णन कर देना उचित प्रतीत होता है।

वियोग में स्वप्न, और स्वप्न में शंका तथा भय, कंप आदि, भारतीय नारी के ही नहीं, वरन् संसार भर की स्त्रियों के अनुभव हैं—

श्रद्धा काँप उठी सपने में, सहसा उसकी आँख खुली,
यह क्या देखा मैंने? कैसे वह इतना हो गया छली!

इस भय तथा प्रकंपन का कारण प्रसादजी स्वयं बतलाते हैं—

स्वजन-स्नेह में भय की कितनी आशङ्काएँ उठ आतीं,
अब क्या होगा इसी सोच में व्याकुल रजनी बीत चली।

मानव हृदयपारखी महाकवि शेक्सपियर का भी तो यही कहना है—

Where love is great the littlest doubts are fears.
Where little fears grow great, great love is there.

अर्थात् प्रेमाधिक्य में छोटी-छोटी शंकाएँ भय का रूप धारण कर लेती हैं और जब छोटे-छोटे भय बड़े भय में परिवर्त्तित हो जावें तो उसका कारण प्रेमाधिक्य ही समझना चाहिए।

मनुष्य जिससे प्रेम करता है, उसी व्यक्ति का दूर जाना तथा उसी की उदासीनता उसे खटकती है। उसी के कामों पर क्रोध भी आता है। उसी की बात लग जाती है। उसी का लोग परेखा

करते हैं हृदय के सूक्ष्म मनोवेगों को पहिचाननेवाले कवि इसको दिखाते आए हैं—

(१) जिसके हृदय सदा समीप है
वही दूर जाता है।
और क्रोध होता उस पर ही
जिससे कुछ नाता है।

—प्रसाद

(२) बिना प्रीति, प्रीतम परेखो कौन काको करै,
प्रीति ही को प्रीतम परेखौ कीजियतु है।

—ठाकुर

जीवन मूरति जान सुनौ गति जो जिय रावरो पार न पावतौ,
संगम रंग अनंग उमंगनि झूमि न आनँद अंबुद छावतौ।
लाड़िलो जीवन त्यों अधरा सब चोंपनि लोभी मनै नहिं भावतौ।
तौ उर दाहक प्राननि गाहक रूखे भये को परेखौ न आवतौ।

—घनानंद

वीर रस

युद्ध के सम्बन्ध में वीर रस के स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना हुई है—

तो फिर मैं हूँ आज अकेला जीवन-रण में,
प्रकृति और उसके पुतलों के दल भीषण में
आज साहसिक का पौरुष निज तन पर लेखें,
राजदण्ड को वज्र बना सा सचमुच देखें।
यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सँभाला
देव आग ने उगली त्योंही, अपनी भीषण ज्वाला।

वात्सल्य रस की भी बड़ी सुन्दर व्यञ्जना हुई है। श्रद्धा मनु से कह रही है—

सूना न रहेगा यह मेरा
लघु विश्व कभी जब रहोगे न;
मैं उसके लिए बिछाऊँगी
फूलों के रस का मृदुल फेन।
झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलरा कर लूँगी बदन चूम;
मेरी छाती से लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम
वह आवेगा मृदु मृदु मलयज-सा
लहराता अपने मसृण बाल;
उसके अधरों से फैलेगी
नव मधुमय स्थिति लतिका प्रवाल।

× × × ×

"माँ" फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज धूसर बाहें आकर लिपट गईं।
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।

× × × ×

नव कोमल अवलम्ब साथ में
वयकिशोर अँगुली पकड़े।
चला आ रहा मौन धैर्य-सा,
अपनी माता को जकड़े।

इसके अतिरिक्त चिन्ता, लज्जा, ईर्ष्या आदि के तो बड़े ही सुन्दर वर्णन हुए हैं। कवि ने उनके स्वरूप खड़े कर दिये हैं।

चिंता

प्रथम सर्ग का शीर्षक चिंता ही है। मनु की चिन्ता के वर्णन में कवि ने इस भाव के लक्षण उपादान, अनुभाव, प्रभाव आदि सब बातों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। रीति-ग्रन्थकारों के यहाँ भी चिन्ता एक सञ्चारी भाव है। वे लोग चिन्ता उस व्याकुलता को कहते हैं जो इष्ट वस्तु को न पाने से होती है। प्रसाद जी का वर्णन बड़ा विशद है—

ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी-स्फोट के भीषण
प्रथम कंप-सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके!
री ललाट की खललेखा,
हरी-भरी-सी दौड़ धूप ओ
जलमाया की चल रेखा।

× × × ×

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा,
चिंता तेरे हैं कितने नाम।
अरी पाप है तू जा, चल, जा,
यहाँ नहीं कुछ तेरा काम।

अभाव की स्मृति ही चिंता का कारण है। अतः मनु उससे पीछा छुड़ाने के लिए विस्मृति का आह्वान करते हैं—

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले
नीरवते बस चुप कर दे।

चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।

परन्तु विस्मृति बुलाने से कभी नहीं आती, और चिन्ता की स्मृति चलती रहती है। उनको कभी प्रलय के ध्वंस का स्मरण होता है और कभी देवताओं के विलास और उनकी शक्ति का।

आह स्वर्ग के अग्रदूत ! तुम
असफल हुए, विलीन हुए।
भक्षक या रक्षक, जो समझो,
केवल अपने मीन हुए।

कीर्ति दीप्ति शोभा थी नचती
अरुण किरण-सी चारों ओर,
सप्त सिन्धु से तरल कणों में,
द्रुमदल में, आनन्द-विभोर।

शक्ति रही हाँ शक्ति; प्रकृति थी
पद-तल में विनम्र विश्रान्त;
कँपती धरणी उन चरणों से
होकर प्रतिदिन ही आक्रान्त।

× × × ×

चिर किशोर वय, नित्य विलासी
सुरभित जिससे रहा दिगंत;
आज तिरोहित हुआ कहाँ, वह
मधु से पूर्ण अनंत वसंत
रत्न-सौध के वातायन, जिनमें
आता मधु मदिर समीर;
टकराती होगी अब उनमें
तिमिंगलों की भीड़ अधीर।

वे अम्लान कुसुम-सुरभित,
मणि रचित मनोहर मालाएँ,
बनी श्रृंखला, जकड़ी जिनमें
विलासिनी सुर-बालाएँ ।

आशा

यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल
सदय हृदय में अधिक अधीर
व्याकुलता सी व्यक्त हो रही
आशा बन कर प्राण समीर ।
यह कितनी स्पृहणीय बन गई
मधुर जागरण सी छविमान
स्मित की लहरों सी उठती हैं
नाच रही ज्यों मधुमय तान

× × × ×

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों
लगा गूँजने कानों में
मैं भी कहने लगा, 'मैं रहूँ'
शाश्वत नभ के गानों में

आशा-पूर्ण मनुष्य किस प्रकार उठता है—

उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है
क्षितिज बीच अरुणोदय कांत;
लगे देखने लुब्ध नयन से,
प्रकृति-विभूति मनोहर शांत ।

इस स्थान पर अरुणोदय का कितना सुन्दर अप्रस्तुत दृश्य कवि ने उपस्थित किया है । आशा में प्रत्येक वस्तु मधुर मालूम होती है यहाँ तक कि तमसा रजनी भी—

इन्द्रजाल-जननी ! रजनी तू,
क्यों अब इतनी मधुर हुई।

काम में तृष्णा तथा अतृप्ति—

'काम' स्वयं कह रहा है—

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा,
सन्तुष्ट ओघ से मैं न हुआ;
आया फिर भी वह चला गया
तृष्णा को तनिक न चैन हुआ।

लज्जा

लज्जा (व्रीड़ा) का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। लज्जा के अनुभावों का वर्णन देखिए—

धूम-लतिका सी गगन तरु पर न चढ़ती दीन,
दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस भार नवीन।
झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का मर्ममय उपचार।

× × ×

गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही वे रोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदम्ब सा था भरा गद्‌गद बोल।

लज्जा से नत हो जाना, पलकों का गिर जाना, अतः भौंहों का कान की ओर बढ़ना, कपोल तथा कानों पर लाली आ जाना, रोमाञ्च गला भर आना आदि अनेक अनुभाव एक साथ प्रसाद जी की दृष्टि में आ गये।

और देखिए, श्रद्धा अपने हृदय पर अधिकार करनेवाली लज्जा से पूछती है—

भाव-वर्णन

कोमल किसलय के अञ्चल में,
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी ;
गोधूली के धूमिल पट में,
दीपक के स्वर में दिपती-सी ॥
वैसे ही माया में लिपटी,
अधरों पर उँगली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का,
आँखों में पानी भरे हुए ॥
नीरव, निशीथ में लतिका-सी,
तुम कौन आ रहीं हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये-सी,
आलिङ्गन का जादू पढ़ती।
किन इन्द्रजाल के फूलों से,
लेकर सुहाग-कण राग भरे।
सिर नीचा कर हो गूँथ रही,
माला जिससे मधु धार ढरे !
पुलकित कदम्ब की माला-सी,
पहना देती हो अन्तर में।

और उसका प्रभाव क्या होता है—

झुक जाती है मन की डाली
अपनी फल भरता के डर में,
सब अंग मोम से बनते हैं,
कोमलता में बल खाती हूँ।
मैं सिमट रही-सी अपने में,
परिहास गीत सुन पाती हूँ ॥

स्मित बन जाती है तरल हँसी,
नयनों में भर कर बाँकपना।

× × ×

छूने में हिचक देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं।
कलरव परिहास भरी गूँजें,
अधरों तक सहसा रुकती हैं॥
संकेत कर रही रोमाली,
चुपचाप बरजती खड़ी रही।
भाषा बन भौंहों की काली,
रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही॥

ऊपर रेखांकित पदों में लज्जा के उपकरणों का वर्णन है।

तुम कौन हृदय की परवशता,
सारी स्वतन्त्रता छीन रहीं।

इस परवशता के कोमल स्वरूप का दर्शन कीजिए—

किरनों का रज्जु समेट लिया,
जिसका अवलम्बन ले चलती।
रस के निर्भर में धँस करके,
आनन्द-शिखर के प्रति बढ़ती॥

पर यथार्थ में लज्जा ही स्त्री का भूषण है। वही उसका सौन्दर्य है, वही उसे आनन्द-शिखर पर ले जा सकती है। लज्जा स्वयं श्रद्धा को बतलाती है—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
मैं शालीनता सिखाती हूँ।
मतवाली सुन्दरता पग में,
नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ॥

लाली बन सरल कपोलों में,
आँखों में अञ्जन-सी लगती।
कुञ्चित अलकों-सी घुँघराली,
मन की मरोर बनकर जगती॥

चञ्चल किशोर सुन्दरता की,
मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ,
जो बनती कानों की लाली॥

ईर्ष्या—

ईर्ष्या का वर्णन दो स्थानों पर हुआ है। दोनों स्थानों पर यह ईर्ष्या मनु के भीतर ही दिखाई गई है। एक स्थान पर तो यह ईर्ष्या श्रद्धा के पालित पशु से होती है, जो श्रद्धा के अनुराग में मनु का साझीदार बन जाता है, फिर मनु को अपने भावी पुत्र से ही ईर्ष्या होने लगती है, क्योंकि कामायनी का ध्यान अब अपनी भावी संतान के पालन-पोषण की ओर चला गया है। ईर्ष्या के मूल में स्वाधिकार की भावना गुप्त रूप से रहती है। उस एकाधिकार में जब कोई साझी आ जाता है, तब उससे ईर्ष्या होने लगती है। मनु के साथ ऐसा ही हुआ—

आह यह पशु और इतना सरल सुन्दर स्नेह।
पल रहे मेरे दिये जो अन्न से इस गेह।
मैं ? कहाँ मैं ? ले लिया करते सभी निज भाग,
और देते फेंक मेरा प्राप्य तुच्छ विराग।
अरी नीच कृतघ्नते ! पिच्छल शिला संलग्न,
मलिन-काई-सी करेगी हृदय कितने भग्न।
हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध,
दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध।

विश्व में जो सरल सुन्दर हो विभूति महान ;
सभी मेरी हैं, सभी करती रहें प्रतिदान ।
यही तो, मैं ज्वलित वाड़व-वह्नि नित्य अशांत ;
सिन्धु लहरों-सा करें शीतल मुझे सब शांत ।

तकली चलाते हुए श्रद्धा को देखकर मनु पूछते हैं—

तिस पर यह पीलापन कैसा ,
यह क्यों बुनने का श्रम सखेद ?
यह किसके लिए बताओ तो,
क्या इसमें है छिप रहा भेद ?

श्रद्धा किसी दूसरे के कारण ही पीली है और सम्भवत: उसी के लिए तकली चला रही है । यही जानकर तो मनु को ईर्ष्या हुई । इसके बाद श्रद्धा जब मनु को अपनी बनाई हुई कुटी दिखाती है तब तो मनु की ईर्ष्या और भड़क जाती है—

"तुम फूल उठोगी लतिका-सी ,
कम्पित कर सुख-सौरभ तरङ्ग ।
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा ,
वन-वन बन कस्तूरी कुरङ्ग ॥
यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व ।
इस पंचभूत की रचना में ,
मैं रमण करूँ बन एक तत्त्व ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कामायनी में अनेक भावों की उद्भावना हुई है । जिस भाव को कवि ने अपने हाथ में लिया है, उसका अपनी चित्रमयी भाषा की शक्ति से चित्र-सा खड़ा

प्रकृति-चित्रण तथा अन्य वर्णन

वन, पर्वत, निर्झर, नदी-नाले, संध्या और प्रभात की रमणीय शोभा आदि प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों तथा चित्रों के साथ मनुष्य के हृदय का, बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति का स्वरूप मनुष्य को अनन्त काल से लुभाता चला आ रहा है। पर साथ ही उसका मन जितना वन्य शोभा तथा ऊबड़-खाबड़ पर्वतीय भू-भागों में रमता है उतना मनुष्य द्वारा बनाये हुए समतल उद्यानों में नहीं। सिंह की गरज, बिजली की कड़क, निर्झरों के मर-मर मनुष्य के हृदय में भावों का जो स्पन्दन उत्पन्न कर देते हैं वह एंजिन की ओं-ओं, मोटर की पों-पों, बन्दूक या तोप की दूंक, ग्रामोफोन तथा रेडियो का स्वर नहीं कर सकते। ग्राम, खेत, पगडंडी, कुत्ता, बिल्ली, गिलहरी इत्यादि जीव भी नगर की सड़कों तथा उनके विचित्र वातावरण से अधिक अपने मालूम देते हैं। इसका कारण दीर्घ साहचर्य्य है। मनुष्य का आदिकाल से जिन दृश्यों, शब्दों तथा क्रियाओं से सम्बन्ध रहा है वे ही उसकी मूल प्रवृत्तियों को अधिक उत्तेजित करती हैं। मूल प्रवृत्तियों के निर्माण में भी उनका हाथ कम नहीं है। वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि का संसर्ग मनुष्य के अनादि काल से है। उसने अपना प्रागैतिहासिक प्रारम्भिक जीवन इन्हीं के बीच में व्यतीत किया। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य प्रकृति से दूर हो गया। तो भी उसने उससे अपना नाता नहीं तोड़ा है। संसार के भँवर-जाल से वह जब-जब बेचैन हो जाता है तब-तब वह प्रकृति की ही गोद में शांति खोजने जाता है। प्रकृति के ये संस्मरण मनुष्य ने अपने साहित्य में सुरक्षित किये हैं। कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि, तीव्र

भावना तथा स्पष्ट शब्दशक्ति से वह रूप तथा व्यापार खड़ा कर देता है जिनको साधारण मनुष्य प्रकृति से स्वयं ग्रहण नहीं कर सकता। अतः वनस्थली का अच्छा वर्णन वनस्थली के वास्तविक दृश्य से अधिक मनोरंजनकारी होता है।

जब से साहित्य की सृष्टि हुई तभी से प्रकृति-चित्रण उसका एक प्रधान अंग हो गया। प्रत्येक जाति के साहित्य के सम्बन्ध में यही बात पाई जाती है। सब से प्राचीन मानव-साहित्य संस्कृत भाषा में सुरक्षित है। उसमें अनेक प्रकार के रमणीय प्रकृति के चित्र हैं। मनुष्य ने इन प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन निरपेक्ष भाव से भी किया है और अपने अन्य वर्णनों तथा विवरणों के परिस्थिति-स्वरूप भी। परिस्थिति-स्वरूप में किया गया वर्णन घटना तथा वस्तु-वर्णन के भावों को बड़े उत्कर्ष पर पहुँचा देता है। रसों की निष्पत्ति में वह उद्दीपन का कार्य करता है। रीतिकाल के प्रकृति-वर्णन का अधिकांश इसी श्रेणी में आता है। यमुना के कूल तथा कछारों के चित्र, शिशिर की रातों की शीतलता, वर्षा की झड़ी, वसन्त ऋतु की रमणीयता आदि का वर्णन रति के स्थायित्व करने के लिए आया है। श्रीकृष्ण के जन्म के समय का आँधी-वर्षा का वर्णन समय की भीषण परिस्थिति का स्वरूप सामने लाकर खड़ा कर देता है। यही नहीं, मनुष्य ने प्रकृति में अपने स्वरूप के तथा अपनी भावनाओं के चित्र देखे हैं। मुख की सुन्दरता कमल और चन्द्रमा में देखी है। कामिनी की कटि सिंह की कटि में देखी है, उसकी जाँघें हाथी की सूँड़ में देखी हैं, विद्रुम में उसके ओष्ठ देखे हैं; तोते की चोंच से अपनी नाक मिलाई है, मोतियों में अपने दाँत बिखरे देखे हैं। उषा में उसने अपनी हँसी पाई है, फूल में प्रसन्नता देखी है, प्रकाश में ज्ञान तथा अंधेरे में अपना अज्ञान देखा है। मनुष्य ने प्रकृति के चित्रों में अपने ही नहीं वरन् ब्रह्म के भी दर्शन किये हैं—

रमणीय चित्रों को उसने उसी ब्रह्म का सौन्दर्य समझा है, सरोवर की लहर में, पुष्पपराग मिश्रित वायु के संचरण में, मधुप के गान में उसने अनाहत नाद सुना है; आँधी, तूफ़ान, उपल-वृष्टि तथा भूचाल में उसी के रौद्र-स्वरूप के तथा ताण्डव नृत्य के दर्शन किये हैं। रहस्यवादी कवियों की रचनाएँ इसी कोटि में आती हैं। जायसी ने सरोवर के कमलों हीरों तथा हंसों में भगवान् के सौन्दर्य के दर्शन किये हैं—

पावा रूप रूप जस चहा, ससि मुख सहुँ दर्पन है रहा ॥

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।

उपर्युक्त प्रकृति-वर्णन के सभी रूप मनुष्य के हृदय को रमानेवाले होते हैं और संस्कृत साहित्य से लेकर आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति-वर्णन के सभी रूप पाये जाते हैं। पाठकजी की 'काश्मीर-सुषमा' तथा शुक्लजी के 'हृदय के मधुर भार' में प्रकृति के सीधे-सादे रमणीय चित्र हैं। प्रकृति से उपदेश ग्रहण करनेवाली तुलसीदासजी की चौपाइयाँ प्रसिद्ध ही हैं—

उदित अगस्त पंथ-जल सोखा, जिमि लोभहिं सोखे संतोषा।
पंक न रेणु सोह अस धरनी, नीति-निपुण नृप की जस करनी ॥
इत्यादि।

पाश्चात्यों ने भी प्रकृति के साथ अपने हृदयों को मिलाया है और जीवन के उन रहस्यों को प्रकृति के चित्रों में अनुभव किया है जो अन्यथा अलभ्य थे—

One impulse from a vernal wood
May teach you more of man.
Of moral evil or of good
Than all the sages can.

प्रकृति-वर्णन की ये सभी प्रणालियाँ हिन्दी साहित्य में पाई जाती हैं। उनकी परम्परा भी शृङ्खलित है। परन्तु अधिकांश कवियों के वर्णन परम्परा-पालन के ही लिए हुए प्रतीत होते हैं। या तो उनके हृदय ने अपना सीधा सम्बन्ध प्रकृति के साथ नहीं जोड़ा अथवा उनकी वाणी में वह शक्ति नहीं थी जिससे प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों को वे पाठकों के सम्मुख रख सकते। बहुत से कवियों ने अलग-अलग चीजें गिनाकर ही छुट्टी ली और कभी-कभी तो यह भी नहीं सोचा कि वे वस्तुएँ वहाँ होती भी हैं, अथवा नहीं। केशव का 'एलाललित लवङ्ग संग पुंगीफल सोहैं' आदि वाला वर्णन इसी प्रकार का है। प्रकृति-वर्णन की बहुत-सी बातें कवि-परम्परा में रूढ़ भी हो गई हैं, जैसे—करील पर पत्ते तथा फूल का न होना। वास्तव में यह बात झूठ है, वसन्त ऋतु में उस पर इतने फूल आते हैं कि एक मील से वे देखे जा सकते हैं; चकवा-चकई का रात में बिछुड़ जाना, चकोर का चुनगी खाना तथा चन्द्रमा की ओर इकटक देखना, पपीहे का स्वाती नक्षत्र में ही वर्षा का जल पीना, स्वाती के जल से ही सीप में मोती बनना, चम्पे के फूल पर भौंरे आदि का न जाना आदि। यद्यपि इस रूढ़ि का अनुसरण बिम्ब ग्रहण कराने में सहायक नहीं होता, पर काव्यदृष्टि से क्षम्य है। सरोवर के जो वर्णन मणियों की सीढ़ियों, हंसों के कलरव और स्वच्छ नील कमल का ही चित्र उपस्थित करते हैं, वे परम्परामुक्त हैं और आनन्द की अनुभूति में विशेष सहायक नहीं हो सकते। वर्तमान कवियों ने इन काव्यगत रूढ़ियों को बहुत हद तक तोड़ डाला है। परन्तु कहीं-कहीं आधुनिक प्रकृति-चित्र कवि की अनुभूति से अत्यधिक अनुरंजित दिखाई पड़ते हैं और कहीं-कहीं रंग की गहराई इतनी अधिक बढ़ जाती है कि चित्र भी उसके नीचे दब गये हैं।

अब हमको उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कामायनी के प्रकृति-

वर्णन पर विचार करना है। कामायनी यद्यपि प्रबन्ध-काव्य है, पर उसकी रंगस्थली प्रकृति का केन्द्र ही है। अतः प्रसंगवश उसमें पर्वत, नदी, नद, वर्षा, आँधी, प्रभात, संध्या आदि के संश्लिष्ट चित्र हैं। प्रसाद जी एक ओर तो कलाकार हैं, और दूसरी ओर रहस्यवादी। अतः वे प्रकृति के स्वरूप का बिम्ब ग्रहण भी कराते चलते हैं और कहीं-कहीं उसमें जड़-चेतन का सामंजस्य भी दिखाते चलते हैं। ग्रन्थ का आरम्भ प्रकृति के एक चित्र के साथ ही हुआ है। ग्रन्थ का पहला शब्द ही विविध रूपधारी 'हिमगिरि' है। नीचे हिमालय के मूल में प्रलय का ज़ल टकराता है, और ऊपर पहाड़ पर बरफ़ है। शिला की छाया में चिंतित मनु बैठे हैं। उनके हृदय का प्रकृति से पूर्ण साम्य है। इसी वर्णन में कलाकार तथा रहस्यवादी प्रसाद के दर्शन कीजिए—

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह;
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रबल प्रवाह!

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन;
एक तत्त्व ही की प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

दूर दूर तक विस्तृत था हिम,
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
साधन करता सुर-श्मशान;

नीचे प्रलय सिंधु लहरों का
होता था सकरुण अवसान।
उसी तपस्वी-से लम्बे थे,
देवदार दो-चार खड़े।
हुए हिम धवल, जैसे पत्थर,
बन कर ठिठुरे रहे खड़े।

कवि ने किस प्रकार मनु के शरीर तथा हृदय के अनुरूप दृश्य उपस्थित किया है। विस्तृत हिम उसके हृदय के समान स्तब्ध है और देवदारु उसी तपस्वी मनु के समान लम्बे तथा श्वेत हैं। कामायनी की रंगभूमि का यह पहला चित्रपट है और विषय के अनुकूल है। प्रसादजी नाट्यकार भी तो हैं, वे समुचित रंगस्थली कैसे न बनाते!

इसके उपरान्त प्रलय की भीषणता का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। साहित्य वह शक्ति है जो महाभयानक तथा भीषण घटनाओं को भी दिव्य रूप दे देता है। वास्तविक प्रलय का अनुभव कदाचित् कोई भी व्यक्ति न करना चाहेगा, पर प्रलय के वर्णन को पढ़ना सभी चाहेंगे। भीषणता में भी सौंदर्य कहाँ से आया? वास्तव में यदि हमारी दृष्टि में किसी वस्तु की यथावत अभिव्यक्ति हो गई, तो वह अभिव्यक्ति ही हमको सुन्दर लगेगी। अतः प्रलय-वर्णन भी सुन्दर हो सकता है। कवि यदि उसका स्वरूप हमारे सामने रख सका तो वह कृतकार्य है : इसमें संदेह नहीं कि ऐसा करने में उसे अतिरंजना का सहारा लेना पड़ेगा। पर यह अतिरंजना भी सचाई की भित्ति पर आश्रित होनी चाहिए। प्रलय में घोर वृष्टि तथा जलप्लावन का वर्णन होता है। उसकी भीषणता का स्वरूप देखिए—

दिग्दाहों से धूम उठे, या,
जलधर उठे क्षितिज तट के!

सघन गगन में भीम प्रकंपन
झंझा के चलते झटके।
अन्धकार में मलिन मित्र की,
धुँधली आभा लीन हुई;
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा
स्तर स्तर जमती पीन हुई।

पंच भूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं के शकल निपात,
उल्का लेकर अमरशक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।

बार-बार उस भीषण रव से
कँपती धरती देख विशेष;
मानो नील व्योम उतरा हो,
आलिङ्गन के हेतु अशेष।

घर गरजती सिंधु लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों-सी,
चलीं आ रहीं फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों-सी।

धँसती धरा, धधकती ज्वाला,
ज्वाला-मुखियों के निःश्वास;
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।

सबल तरङ्गाघातों से उस
क्रुद्ध सिन्धु के, विचलित-सी
व्यस्त महा कच्छप-सी धरणी,
ऊभ-चूभ थी विकलित-सी।

वेला क्षण-क्षण निकट आ रहा
क्षितिज क्षीण फिर लीन हुआ,
उदधि डुबा कर अखिल धरा को
बस मर्य्यादा-हीन हुआ।

उसके लीन होने में पानी के कारण पृथ्वी-आकाश एक हो जाने का कैसा चित्र है, इसके पहले लहरों की तुलना फेन उगलती सर्पिणियों से करके हमारी आँखों के सामने एक पूर्ण-स्वरूप खड़ा कर दिया है। फेन शब्द ने सर्प के फेन तथा समुद्र के फेन दोनों का अर्थ देकर बिम्ब-ग्रहण में बड़ी सहायता दी है। इस प्रलय-सागर में पड़ी हुई नौका की दशा क्या हो सकती है—

एक नाव थी, और न उसमें
डाँड़े लगते या पतवार;
तरल तरङ्गों में उठ गिर कर
बहती पगली बारम्बार।

लगते प्रबल थपेड़े, धुँधले
तट का था कुछ पता नहीं,
कातरता से भरी निराशा
देख नियति-पथ बनी वहीं।

लहरें व्योम चूमती उठतीं
चपलाएँ असंख्य नचतीं
गरल जलद की खड़ी झड़ी में
बूँदें निज संसृति रचतीं।

चपलाएँ उस जलधि विश्व में,
स्वयं चमत्कृत होती थीं
ज्यों विराट बाड़व ज्वाला में
खंड-खंड हो रोती थीं।

जलनिधि के तलवासी जलचर
　　विकल निकलते उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह तव प्राणी
　　कौन ! कहाँ ! कब सुख पाते !
घनीभूत हो उठे पवन, फिर
　　श्वासों की गति होती रुद्ध;
और चेतना थी बिलखाती,
　　दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध।
उस विराट् आलोड़न में ग्रह
　　तारा बुद्बुद् से लगते,
प्रखर प्रलय पावस में जगमग—
　　ज्योतिरिङ्गणों-से जगते।

प्रलय के नाश का भी मूर्त स्वरूप प्रसादजी ने खड़ा किया है—

रत्न-सौध के वातायन जिनमें
　　आता मधु मदिर समीर;
टकराती होगी अब उनमें
　　तिमिंगलों की भीड़ अधीर।
देवकामनी के नयनों से
　　जहाँ नील-नलिनों की सृष्टि
होती थी, अब वहाँ हो रही
　　प्रलयकारिणी भीषण वृष्टि।

इस प्रकार प्रलय की आँधी, वर्षा, बिजली, समुद्र की लहरों तथा उनके विनाशकारी स्वरूप का वर्णन कर कवि ने हमारे सामने पूरा चित्र खड़ा कर दिया है।

इस प्रलय निशा के प्रातःकाल का वर्णन तो इतना सजीव हुआ है कि पढ़ते-पढ़ते शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। उस प्रातःकाल में हिमालय ने अद्भुत आभा प्राप्त की—

उषा सुनहले तीर बरसती,
जयलक्ष्मी-सी उदित हुई;
उधर पराजित काल-रात्रि भी,
जल में अंतर्निहित हुई।

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से,
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में,
शरद विकास नये सिर से।

नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग,
सितसरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।

धीरे-धीरे हिम-आच्छादन
हटने लगा धरातल से,
जगीं वनस्पतियाँ अलसाईं
मुख धोती शीतल जल से।

नेत्र-निमीलन करती मानों
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने;
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार-बार जाती सोने।

सिंधु-सेज पर धरा-वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये-सी ऐंठी-सी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसादजी ने अपने वर्णनों में चित्रशैली का प्रयोग किया है। प्रलय-सागर में पृथ्वी का थोड़ा

सा भाग ही निकला हुआ दिखाई दे रहा है। कवि ने उसको सेज पर बैठी हुई वधू के रूप में देखा है। यही नहीं, उसके संकोच तथा मान का कारण भी बता दिया है। प्रलय रूपी रात की बातों की याद में ही उसे संकोच है और प्रियतम की निर्दय बातों के कारण ही कदाचित् उसका मान है। कवि ने प्रकृति में मानवी रूप के ही नहीं वरन् हृदय के भी दर्शन किये हैं। इसी रूपक से चित्र कितना मूर्त होकर हमारे सामने आया है।

कामायनी के वियोग तथा संयोग दोनों अवसरों पर संध्या । वर्णन हुआ है। यह वर्णन जितना सुन्दर हो सकता था उतना हीं हुआ। वियोग-वर्णन में कवि का ध्यान संध्या पर न होकर कामायनी पर अधिक है। पर इन्हीं दो-चार पंक्तियों में कवि ने संध्या की वेग से दौड़ती हुई सुनहली किरणों का, थकी हुई चिड़ियों का अपने बसेरों को लौटने का तथा धीरे-धीरे अँधेरे के बढ़ने का वर्णन कर हमारे सामने एक सजीव रूप खड़ा किया है।

कवि ने प्रकाश-किरणों की कामायनी के प्रति उपेक्षा और अँधेरे से आच्छादित वृक्षों तथा पहाड़ों की उसके प्रति सहानुभूति दिखाई है। उनकी सनसनाहट की ध्वनिरूपी श्वास मानों श्रद्धा की श्वासों से सहानुभूति के ही कारण निकल रही है।

नील गगन में उड़ती-उड़ती विहँग बालिका-सी किरणें
स्वप्नलोक को चली थकी-सी नींद-सेज पर जा गिरने;
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं;
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब, लगे जभी तम-घन घिरने।

संयोगवाला वर्णन भी वियोग-स्वरूप ही है यद्यपि 'नि परिचय हो रहे, तब भी रहा कुछ शेष' वाला वर्णन बिलकु परम्पराभुक्त है—

गिर रहा निस्तेज गोलक, जलधि में असहाय।
घन-पटल में डूबता था किरण ; का समुदाय।
कर्म का अवसाद दिन से कर रहा छल-छंद।
मधुकरी का सुरस संचय हो चला अब बन्द।
उठ रही थी कालिमा धूसर-क्षितिज से; दीन।
भेटता अंतिम अरुण-आलोक वैभव-हीन।
यह दरिद्र मिलन रहा रच एक करुणा-लोक।
शोक भर निर्जन निलय से बिछुड़ते थे कोक।

हिमालय के ऊँचे ऊँचे शृङ्गों के हलके वायु-मंडल की ओर श्रद्धा तथा मनु बढ़ते जा रहे हैं। उस स्थान के दृश्य का भी बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है—

पवन वेग प्रतिकूल उधर था
कहता फिर जा अरे बटोही !
किधर चला तू मुझे भेद कर
प्राणों के प्रति क्यों निर्मोही ?
छूने को अम्बर मचली सी
बढ़ी जा रही सतत उँचाई;
विक्षत उसके अंग, प्रकट थे
भीषण खड्ड भयकारी खाई।
रवि-कर हिम-खंडों पर पड़कर
हिमकर कितने नये बनाता।
द्रुततर चक्कर काट पवन भी
फिर से वहीं लौट आ जाता।
नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुर-धनु-माला पहने;
कुंजर-कलम सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने।

प्रवहमान थे निम्नदेश में
शीतल शत शत निर्झर ऐसे
महाश्वेत गजराज गण्ड से
बिखरीं मधु-धाराएँ जैसे।

कवि अपने वर्णनों में कभी सत्य का आश्रय नहीं छोड़ सकता। वैज्ञानिक और कवि के द्वारा सत्य की अभिव्यक्ति ही भिन्न भिन्न प्रकार से होती है। विज्ञान तर्क का मार्ग ग्रहण करता है और कवि भावना का। हम ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों वायु हलकी होती जाती है और उसमें मनुष्य को कठिनाई का अनुभव होता जाता है। उसके भीतर की हवा का दबाव वायु-मंडल के दबाव से कम होता है। यह वर्णन वैज्ञानिक का है। कवि कहेगा, पवन प्रचार कर कहता है अरे बटोही! लौट जा, प्राणों का मोह छोड़कर तू मुझे पार कर कहाँ जाना चाहता है इत्यादि।

अप्रस्तुत रूप से भी प्रसाद जी ने हमारे सामने प्रकृति के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। इन चित्रों में एक बात यह और देखनी है कि वे प्रस्तुत विषय के स्वरूप-परिचय में तथा भावोत्कर्ष में सहायक होते हैं या नहीं। स्वरूप-साम्य से भावोत्कर्ष अधिक महत्त्व-पूर्ण है। इसी लिए आँख की उपमा कमल से दी जा सकती है पर कौड़ी से नहीं। सारूप्य से साधर्म्य अधिक आवश्यक है। यदि दोनों बातें मिल जावें तो एक एक ग्यारह। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रसाद जी के ये अप्रस्तुत वर्णन सारूप्य तथा साधर्म्य दोनों की दृष्टि से उपयुक्त हैं। कवि चित्र सा खींचता हुआ बढ़ता है। नील परिधान के बीच में श्रद्धा के मुख का वर्णन देखिए—

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम,

अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि-धाम।

(५) कहीं कहीं तो कवि मानवी रूप से प्रकृति के स्वरूप पर और प्रकृति के स्वरूप से फिर अन्य प्रकृति-स्वरूपों पर चला जाता है—

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

नीले वस्त्रों के बीच अधखुले अंग को देख कर कवि को वन के बीच में खिले फूल की याद आई और उसके ध्यान ने मेघ में चमकती हुई बिजली का चित्र उसके सामने खड़ा कर दिया। रमणी के रूप-वर्णन में ही नहीं, वरन् सूक्ष्म भावों के वर्णन में भी कवि को प्रकृति के स्वरूप स्मरण हुए हैं। चिंता, आशा, ईर्ष्या, भक्ति, लज्जा, वासना आदि मनोभावों के वर्णन में से कहीं से कोई पंक्ति उठा लीजिए, यही बात मिलेगी। लज्जा का प्रभाव देखिए—

पुलकित कदंब की माला सी
पहना देती हो अंतर में;
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि, कामायनी के कवि ने प्रकृति के हर कोने को टटोला है और उसके रत्नों को चुन चुन कर अपने काव्य में रक्खा है और उन रत्नों को भिन्न भिन्न प्रकार से सजाकर अनेक रमणीक चित्र बनाये हैं।

कामायनी के प्रकृति चित्रण के उपर्युक्त विवेचन से एक बात और स्पष्ट है कि प्रसाद जी का मनुष्य के जीवन—उसकी भावनाएँ, उमंगें, उसके रंग-रूप और प्रकृति के स्वरूप—के

साथ पूर्ण सामञ्जस्य है। जब कवि किसी व्यक्ति का वर्णन करने लगता है तो इसमें उसे मेघ, बिजली, वन, वृक्ष, पर्वत, हिम, किरण, कमल, मकरन्द आदि प्रकृति की रमणीक वस्तुएँ दिखाई देने लगती हैं और जब वह प्रकृति-चित्रण करने लगता है तो उसे प्रलय की आँधी में ताण्डव नृत्य, जल प्लावन में मनुष्य की वासना का वेग, प्रभात की लाली में रमणी का हास्य तथा पुष्प के मकरन्द में मनुष्य का विलास दिखाई देता है। अपनी इस भावना की अभिव्यञ्जना के लिए कवि बड़ी चित्रमयी लाक्षणिक भाषा का प्रयोग करता है। लतिका का घूँघट से देखना, आलोक सभी मूर्च्छित सोते, फूलों के अंचल, कुसुम-वैभव, हिमालय हँसी, वनस्पतियाँ अलसाईं, लहरियाँ अँगडाई मदिर-वन, पराग क्रीड़ा, सूखे तरु फिर मुसकाए आदि प्रयोग कवि की इसी भावना के कारण हुए हैं और इसी भावना के कारण हिमालय में कवि को शिवजी का स्वरूप दिखाई देता है और मनु के समान 'देवदार दो चार खड़े' दिखाई देते हैं। प्रसाद जी की यह शैली कामायनी की विशेषता है। इसको वे पूर्ण रूप से अपना चुके थे। कुछ लोग छायावाद की शैली भी इसी को कहते हैं। प्रकृति और पुरुष का पूर्ण तादात्म्य और अभेद ही कामायनी के प्रकृति-चित्रण की विशेषता है।

प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त कामायनी में और वस्तु-वर्णन भी हुए हैं। मानव-शिशु तथा पशु-शिशु दोनों की क्रीड़ाओं का वर्णन है। युद्ध का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी रमणीय है। भावना का प्राधान्य तथा रूढ़ियों का बहिष्कार होने से वे वर्णन सजीव हो गये हैं—

पालित पशु-शिशु—

एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ;
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ!

चपल कोमल कर रहा फिर सतत पशु के अंग,
स्नेह से करता चमर उद्ग्रीव हो वह संग।
कभी पुलकित रोम-राजी से शरीर उछाल,
भाँवरों से निज बनाता अतिथि सन्निधि जाल।
कभी निज भोले नयन से अतिथि-वदन निहार,
सकल संचित स्नेह देता दृष्टि-पथ से डार;
और वह पुचकारने का स्नेह शवलित चाव
मंजु ममता से मिला वन हृदय का सद्भाव
देखते ही देखते दोनों पहुँच कर पास
लगे करने सरल शोभन मधुर मुग्ध विलास।

पशु के ऊपर स्वामिनी का हाथ फेरना, पशु का गर्दन ऊँचा करना, रोमाञ्चित हो जाना, स्वामिनी के पास चक्कर काटना, कभी मुख की ओर भोले नेत्रों से देखना, कभी स्वामिनी का पुचकारना आदि कितने स्वाभाविक चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं जो उसके सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण देते हैं।

मानव-शिशु-वर्णन—

"माँ"—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाहें आकर लिपट गईं
निशा-तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।
"कहाँ रहा नटखट ! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना
अरे पिता के प्रतिनिधि ! तूने भी सुख दुख तो दिया घना।
चंचल तू, बनचर मृग बन कर भरता है चौकड़ी कहीं
मैं डरती तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना।"

उपर्युक्त वर्णन में केवल एक पंक्ति—'लुटरी, खुली अलक रज-धूसर बाहें आकर लिपट गईं' किस प्रकार खेल कर आये

हुए बच्चे का माँ से लिपट जाने का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करती है।

भूत, प्रेत, पिशाचिनी आदि से तो युद्ध-वर्णन मुक्त है, पर उसमें भूतनाथ का ताण्डव अवश्य है। अपनी शिव-भक्ति के कारण प्रसाद जी उन्हें न छोड़ सके। मनु अंत में शिव जी के ही बाण से आहत होकर गिरते हैं—

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सँभाला,
देव आग ने उगली त्यों ही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले,
टूट रहे नभ धूमकेतु नभ नीले पीले।
अंधड़ था बढ़ रहा प्रजा-दल सा झुँझलाता,
रण-वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।
ताण्डव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे,
नियति-विकर्षण मची त्रास से सब व्याकुल थे।
मनु फिर रहे अलात-चक्र में उस घन-तम में,
वह रक्तिम उन्माद नाचता कर निर्मम में।
उठा तुमुल रणनाद भयानक हुई अवस्था,
बढ़ा विपद्-समूह मौन पद-दलित व्यवस्था।
आहत पीछे हटे स्तम्भ से टिक कर मनु ने,
श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।

× × ×

अन्त में

धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर

अंतरिक्ष में महा शक्ति हुंकार कर उठी।
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं,
और गिरीं मनु पर मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर।
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।

कामायनी के पात्र

कामायनी में मुख्य पात्र तीन हैं—मनु, कामायनी (श्रद्धा) और इड़ा। किलात, आकुलि, मानव तथा प्रजा गौण हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, ये पात्र प्रतीक भी हैं। मनु 'मन' के प्रतीक हैं और श्रद्धा तथा इड़ा मन के दो पक्षों—'हृदय' तथा 'बुद्धि' के प्रतीक हैं। प्रतीक होने से इन चरित्रों में कोई निज की विशेषताएँ नहीं होनी चाहिए। वे केवल एक 'प्रकार' (Type) का प्रतिनिधित्व करते हुए पाये जाने चाहिए। पर कवि ने अपने कौशल से इन पात्रों से प्रतिनिधित्व भी कराया है और उनके चरित्र में ऐसी बातें भी रख दी हैं, जिनसे उनका व्यक्तित्व अलग स्पष्ट है, और वे साधारण व्यक्ति भी प्रतीत होते हैं।

मनु

मनु गौर वर्ण के एवं दृढ़ शरीरवाले बड़े तेजस्वी व्यक्ति हैं। उनका शरीर देवदारु के समान लम्बा है, और उनकी अवस्था तरुण है। वे एक खोये हुए व्यक्ति के समान हमको प्रारम्भ में मिलते हैं। उनके हृदय में शांति नहीं है। महाप्रलय में देवसृष्टि के विनाश के कारण वे चिन्तातुर हैं। वे कुछ खोज में से हैं। जीवन क्या है, उसका क्या उद्देश्य और अंत है, इन्हीं प्रश्नों का वे उत्तर चाहते हैं। पर उत्तर देनेवाले कोई नहीं हैं। इस एकाकीपन से भी वे व्याकुल हैं—

कब तक और अकेले ! कह दो
हे मेरे जीवन ! बोलो।
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

और चिन्ता तथा निराशा से पूर्ण हैं। तब श्रद्धा उनको साहस दिलाती है और कर्म की ओर प्रवृत्त करती है—

कहा आगन्तुक ने सस्नेह —
"अरे तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव;
जीतते जिसको मरकर वीर।"

इसके बाद मनु में कर्म की प्रवृत्ति जागरित होती है। पर वे श्रद्धा के अनुकूल ही सब कर्म नहीं करते। यथार्थ में श्रद्धा उनके काम से सन्तुष्ट नहीं। मनु में विलास की वासना बढ़ जाती है। वे सोमपान करते हैं, मांस खाते हैं और कामायनी को भी इसी काम के लिए प्रेरित करते हैं। कामायनी उनको दया, उदारता, करुणा और सदाचार का पाठ पढ़ाती है, पर मनु उसे नहीं सुनते।

पुरोडाश के साथ सोम का
पान लगे मनु करने।
लगे प्राण के रिक्त-अंश को
मादकता से भरने।

कामायनी से भी वे आग्रह करते हैं—

देवों को अर्पित मधु मिश्रित
सोम अधर से छू लो।
मादकता-दोला पर प्रेयसि
आओ ! मिलकर झूलो।

मनु में स्वार्थ, ईर्ष्या, और स्वाधिकार की भावना भी बड़े प्रबल रूप में जागरित है। वे यह चाहते हैं कि घर और बाहर जो कुछ है वह सब उनका रहे और उन्हीं का हो जाय। कामायनी की यह शिक्षा भी—

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।

अपने सुख को विस्मृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

मनु नहीं मानते।

अपने रिक्त जीवन को मादकता से भरे हुए मनु यह भी सहन नहीं कर सकते कि श्रद्धा किसी पशु से भी स्नेह करे। इसीलिए वे उसकी बलि देते हैं। श्रद्धा का तकली कातना, गृहस्थी के अन्य कर्म करना, उसका भावी पुत्र के लिए कुटी बनाना, कपड़े तैयार करना आदि उनको अच्छा नहीं लगता। उनको यह बात सह्य ही नहीं होती कि वह उनको छोड़ किसी दूसरे के काम में अनुरक्त रहे, चाहे वह उनका पुत्र ही क्यों न हो। थोड़ी बहुत ईर्ष्या कदाचित् प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सभी पुरुषों में होती है। बच्चे भी अपनी माता पर अपना पूर्ण अधिकार चाहते हैं, पिता के अधिकार से उनको भी ईर्ष्या होती है, अपने बच्चों की माता का अपनी ओर से खिचाव पिता को भी खटकता हो, पर मनु में यह ईर्ष्या इतने अधिक परिमाण में थी कि वे यह कहते हुए घर छोड़ कर चल दिये—

"तुम फूल उठोगी लतिका-सी
कंपित कर सुख सौरभ-तरंग,
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा,
वन-वन बन कस्तूरी कुरंग।
यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

× × × ×

लो चला आज मैं छोड़ यहीं
संचित संवेदन भार-पुञ्ज।"

उन्होंने न तो श्रद्धा की एक बात सुनी और न अपने भावी कष्टों की कल्पना की। वे पहाड़ और जंगलों में भटकने लगे। काम के स्मरण दिलाने पर उनको श्रद्धा का फिर से स्मरण हुआ, पर वह चिरस्थायी नहीं हुआ। इतने में इड़ा से उनकी भेंट हुई। उनके स्वाधिकार की भावना अब भी प्रबल थी। उन्होंने उसी से प्रेरित होकर इड़ा का राज्य सँभाला, देश की व्यवस्था की और फिर अंत में इड़ा पर भी अधिकार करना चाहा। प्रजा से इस समय जो उनका युद्ध हुआ, उसमें आहत हो जाने पर उनको अपने कर्म से ग्लानि हुई और निर्वेद हुआ। इस प्रकार पूर्ण तृप्ति के पश्चात् मनु की भावनाएँ शांत हुईं। इसी को मनोविज्ञानवेत्ता सबलीमेशन (sublimation) अर्थात् तृप्ति द्वारा शांति कहते हैं। यहाँ पर मनु मन के प्रतीक मात्र हैं।

अब मनु बिल्कुल परिवर्तित स्वरूप में हमारे सामने आते हैं। यद्यपि इड़ा से भी उन्होंने जीवन का वास्तविक मूल्य पूछा था—

"मैं तो आया हूँ देवि बता दो जीवन का क्या सहज मोल
भव के भविष्य के द्वार खोल।"

पर वह उनको बता न सकी। और अन्त में उन्होंने फिर श्रद्धा की सहायता से रहस्य की खोज की और आनन्द प्राप्त किया। वे जीवन का मूल्य समझ गये और अंत में इड़ा से कहते हैं—

'हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमी हैं;
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ कमी नहीं है।

सब भेद-भाव भुलवा कर
दुख-सुख को दृश्य बनाता

मानव कह रे ! 'यह मैं हूँ',
यह विश्व नीड़ बन जाता ॥

इस प्रकार मनु के चरित्र में कवि ने पूर्ण विकास दिखाया है। चिंतापूर्ण, कर्म में प्रवृत्त, विलासी, स्वार्थी, आत्माभिमानी, ईर्ष्यालु तथा लड़ाकू मनु क्षोभ, आत्मग्लानि तथा निर्वेद की भावनाओं को पार करते हुये अंत में शांति प्राप्त करते हैं। उनके मन की चंचलता मिट जाती है और वे समरसता को प्राप्त करते हैं।

मनु के चरित्र में दो बातें और ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि वे अपनी धुन के पक्के हैं। यदि वे विलास में लीन हैं तो उसी में पूर्ण अनुरक्त हैं, किसी भी बाधा को उसके सामने तुच्छ समझते हैं। यदि राज्यस्थापन में लगे हुए हैं तो उसमें भी अपना पूर्ण कौशल दिखाते हैं, युद्ध में भी वीरता दिखाते हैं। आनन्द की खोज में भी उनकी उतनी ही कर्म-वीरता देखी जाती है। दूसरी बात यह है कि उनमें उन कोमल भावनाओं का अभाव है जो साधारण पुरुष में पाई जाती हैं। श्रद्धा के गर्भवती होनेपर उन्होंने उसे छोड़ दिया। अपने भावी पुत्र के लिए उनके हृदय में कोई स्थान नहीं रहा, यहाँ तक कि मानव जब बड़ा होकर उनके सामने आया तब भी उन्होंने उससे एक बात न की—परिचय भी नहीं पूछा। अन्त में जब मानव इड़ा तथा प्रजावर्ग के साथ उनके शांत तपोवन में पहुँचा, तब भी मनु ने उससे भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा। भविष्य जीवन के लिए न कुछ उपदेश दिया और न आदेश। केवल चलता हुआ आशीर्वाद ही निर्वेद के समय दिया—

यह कुमार मेरे जीवन का
उच्च अंश कल्याण कला,

कितना बड़ा प्रलोभन मेरा
हृदय स्नेह बन जहाँ ढला।
सुखी रहे, सब सुखी रहें बस
छोड़ो मुझ अपराधी को,
श्रद्धा देख रही चुप मनु के
भीतर उठती आँधी को।

श्रद्धा

श्रद्धा हृदय की प्रतीक है और आदर्श गृहिणी है। हृदय (1) कोमल और कठोर दोनों प्रकार की भावनाओं का घर है, पर श्रद्धा में केवल कोमल भावनाएँ ही हैं। (उसमें लज्जा, कोमलता, सुकुमारता, प्रेम, वात्सल्य, दया, अनुराग, क्षमा, उदारता, धैर्य तथा साहस सभी गुण विद्यमान हैं।) उसका रूप सुन्दर है और (2) व्यक्तित्व प्रभावशाली है। श्रद्धा के स्वरूप का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रसाद जी ने खींचा है—

हृदय की अनुकृत बाह्य उदार
एक लम्बी काया उन्मुक्त,
मधु पवन-क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।
× × × ×
और उस मुख पर वह मुसक्यान
रक्त किसलय पर ले विश्राम,
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

उसके इस रूप से मनु बड़े प्रभावित हुए—

कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार?

है, शालियाँ बीनती तथा अन्न इकट्ठा करती है और अपने पति तथा सन्तान में अनुरक्त रहती है। उसके ये शब्द किस प्रकार एक साधारण गृहिणी के मुख से निकले हुए प्रतीत होते हैं—

(मनु से)

"दिन भर थे कहाँ भटकते तुम"
बोली श्रद्धा भर मधुर स्नेह।
"यह हिंसा इतनी है प्यारी,
जो भुलवाती है देह-गेह।
मैं यहाँ अकेली देख रही
पथ, सुनती थी पद-ध्वनि नितांत,
कानन में जब तुम दौड़ रहे,
मृग के पीछे बन कर अशांत।
ढल गया दिवस पीला पीला,
तुम रक्तारुण बन रहे घूम;
देखो नीड़ों में विहग युगल
अपने शिशुओं को रहे चूम।
उनके घर में कोलाहल है
मेरा सूना है गुफा-द्वार।"

(पत्नी-रूप में)

(अपने भावी शिशु के विषय में)

झूले पर उसे झुलाऊँगी
दुलराकर लूँगी बदन चूम,
मेरी छाती से लिपटा इस
घाटी में लेगा सहज घूम।

× × × ×

अपनी मीठी रसना से वह
बोलेगा ऐसे मधुर बोल,

इस सुन्दरता में लज्जा ने मिलकर सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है—

धूम लतिका-सी गगन-तरु पर न चढ़ती दीन,
दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस-भार नवीन।
झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का मर्ममय उपचार।
गिर रहीं पलकें झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रूलता भी कान तक चढ़ती रही वेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदंब-सा था भरा गद्गद बोल।

(३) श्रद्धा प्रेम की मूर्ति है। उसका प्रेम भी सब के लिए है। वह पशुओं से भी प्रेम करती है। और मनु को भी यही समझाती है—

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्मृत कर लो,
सब को सुखी बनाओ।

उसको इड़ा से भी ईर्ष्या नहीं होती, वरन् उसके साथ बड़ी सहानुभूति दिखाती है। वह भी श्रद्धा की महत्ता स्वीकार करती है। मनु भी अंत में यह कहकर उसी की शरण में जाते हैं—

"तुम देवि! आह कितनी उदार,
यह मातृ-मूर्त्ति है निर्विकार।
हे सर्वमंगले! तुम महती,
सब का दुख अपने पर सहती।"

(५) श्रद्धा गार्हस्थ्य जीवन में भी पूर्ण गृहिणी है। वह गृह-कार्य में लगी रहती है; तकली चलाती है, कुटी तैयार करती

कामायनी का यह साहस कहने भर को ही नहीं है, वरन् उसने मनु को घायल होने पर धैर्य और आश्वासन दिया और मनु को अपना सहारा देकर कैलाश की ऊँचाई पर पहुँचाया। संसार की बाधाएँ सदैव उससे नीचे रहीं। वे कभी मार्ग में रोड़े न बन सकीं—

कुछ उन्नत थे वे शैल-शिखर
फिर भी ऊँचा श्रद्धा का शिर,
वह लोक अग्नि में तप गल कर
थी ढली स्वर्ण-प्रतिमा बनकर।

सारांश यह कि प्रसाद जी की श्रद्धा या कामायनी सौन्दर्य तथा सुकुमारता की मूर्त्ति, लज्जा की प्रतिकृति, (प्रेम, दया, तथा उदारता का अवतार,) घर की लक्ष्मी, शक्ति में सिंहिनी और साहस में शक्ति है।

इड़ा

इड़ा को प्रसाद जी ने बुद्धि के प्रतीक रूप में वर्णन किया है। उसमें सौन्दर्य तो है पर श्रद्धा की भाँति उसकी सुन्दरता नवोन्मेषशालिनी नहीं। सुन्दरता उसकी भी कम नहीं—

"उस रम्य फलक पर नवल चित्र-सी
प्रकट हुई सुन्दर बाला,
वह नयन-महोत्सव की प्रतीक
अम्लान नलिन की नवमाला।"

पर उसका स्वरूप बड़ा उलझनवाला है।

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल

× × × ×

वक्षःस्थल पर एकत्र धरे
संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।

मेरी पीड़ा पर छिड़केगा।
जो कुसुम-धूलि मकरंद घोल।
(माता रूप में)

इसके अतिरिक्त श्रद्धा में प्रेमिका का स्वरूप भी है। संयोग में वह गृहिणी के रूप में रहती है। उसमें न उतावली है और न काम-वासना। पर विरह में वह परम्परानुगामिनी वियोगिनी हो जाती है और मंदाकिनी नदी से सुख-दुःख की समस्या को सुलझवाती है—

जीवन में सुख अधिक या कि दुख मंदाकिनि कुछ बोलोगी ?
नभ में नखत अधिक, सागर में बुद्बुद हैं या गिन दोगी ?"

पर उसका विरह भी संयत है। उसमें वेदना है, पीड़ा है, पर घबड़ाहट नहीं। वह साहस नहीं छोड़ती—

इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या,
कमायनि ! तू हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सहले।

कामायनी में साहस भी बहुत है। वास्तव में वह शक्ति-स्वरूपा है। स्वयं भी शक्ति रखती है और दूसरों में भी उसका संचार करती है। निराशापूर्ण मनु को वह कैसे सशक्त शब्दों में प्रोत्साहित करती है—

कहा आगन्तुक ने सस्नेह—
अरे तुम इतने हुए अधीर।
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते जिसको मरकर वीर।

× × × ×

वह आशा और उत्साह से पूर्ण है।

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल।
विश्व भर सौरभ से भर जाय,
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

पुरुष और नारी

प्रसाद जी ने श्रद्धा में आदर्श नारी का स्वरूप दिखाया है और मनु में सांसारिक पुरुष का। पुरुष में दृढ़ता, वासना तथा स्वार्थ है और स्त्री में दया, उदारता तथा कोमलता है। दोनों के समन्वय से आनन्द की अनुभूति होती है। प्रसाद की स्त्री "विश्वरानी, सुन्दरी नारी, जगत की मान" है। वह सुकुमार होते हुए भी दृढ़ है—

दृढ़ सकल सुकुमारता में रम्य नारी मूर्त्ति।

पुरुष घर के बाहर काम करने के लिए है और स्त्री घर के भीतर। पर कर्मों की प्रेरक स्त्री ही है। वही उसको इड़ा की भांति संसार की ओर आकृष्ट करा कर कर्म कराती है और वही श्रद्धा की भांति हृदय के द्वन्द्व को नष्ट कराती है।

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पग-तल में,
पीयूष स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।
देवों की विजय, दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा,
संघर्ष सदा उर-अंतर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।
आँसू से भींगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से,
यह संधि-पत्र लिखना होगा।

था एक हाथ में कर्म-कलश,
वसुधा जीवन रस-सार लिये।
दूसरा विचारों के नभ को
था मधुर अभय अवलंब दिये।

(2) वह तर्क, कर्म और विचारों की प्रतीक है। उसमें उलझन है। मनु उसी की प्रेरणा से राज्य-स्थापना करते हैं। पर वह उनको शांति नहीं दे पाती; वह मनु को 'जीवन का सहज मोल' नहीं बता पाती। उसमें न आत्म-बल है, और न उच्च भावनाएँ। श्रद्धा के सामने वह अपने को बड़ा तुच्छ समझती है। वह श्रद्धा की कृपा की अभिलाषिणी है। वह श्रद्धा से कहती है—

"मैं आज अकिंचन पाती हूँ,
अपने को नहीं सुहाती हूँ,
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूँ,
वह स्वयं नहीं सुन पाती हूँ,
दो क्षमा, न दो अपना विराग,
सोई चेतना उठे जाग।

अंत में इड़ा प्रजावर्ग के साथ श्रद्धा और मनु के आश्रम में जाती है और वहाँ इड़ा श्रद्धा के चरणों में नत होती हुई देखी जाती है—

भर रहा अंक श्रद्धा का
मानव उसको अपना कर
था इड़ा-शीश चरणों पर
वह पुलक भरी गद्गद स्वर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इड़ा का स्थान श्रद्धा से बहुत नीचा है। पर इतना होते हुए भी मनु को आनन्द प्राप्त करने के लिए इड़ा का सहवास आवश्यक था।

है अवश्य, पर वह विषय की गहनता के साथ प्रयुक्त हुआ है। जहाँ विषय सरल है तथा भावमय है, वहाँ उनकी भाषा भी बड़ी चलती और मुहावरेदार है। उन्होंने केशव की भाँति ऐसे कठिन अप्रचलित संस्कृत शब्द नहीं रक्खे, जहाँ उनकी नितान्त आवश्यकता नहीं अथवा जहाँ सरल प्रचलित प्रयोग अधिक उपयुक्त होता। कामायनी की भाषा की उन विशेषताओं का अब हम अध्ययन करेंगे, जिनसे उसका अर्थ समझने में सरलता होगी।

कामायनी की भाषा की पहली विशेषता तो यह है कि वह बड़ी लक्षणापूर्ण है। लक्षणा में मुख्यार्थ का बाध होता है और उसके स्थान पर दूसरा अर्थ लगाया जाता है। 'वह अपनी सफलता का समाचार सुनकर खिल गया, लाठी चल गई, उसके पास बड़ा पैसा है, गाँव गंगा पर बसा है, भारत बड़ा निर्धन है—ये प्रयोग लाक्षणिक हैं। इनमें रेखाङ्कित शब्दों के अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं, 'प्रसन्न हो गया,' 'द्वारा लड़ाई हुई,' 'धन,' 'के किनारे,' 'भारतवासी।' परन्तु ये लक्षणाएँ बड़ी साधारण हैं और भाषा में इस प्रकार समा गई हैं कि उनकी लाक्षणिकता का हमको पता भी नहीं लगता। कुछ प्रयोग तो बिल्कुल रूढ़ हैं, जैसे, 'भारतवासियों' के लिए 'भारत' और 'धन' के लिए 'पैसा।' इनसे अर्थ में कुछ चमत्कार नहीं होता और न व्यंजक-शक्ति ही बढ़ती है। पर अधिकांश लक्षणायें व्यंजनार्थ को बढ़ा देती हैं। उपर का 'वह खिल गया' प्रयोग (प्रसन्न हो गया) फूल की प्रसन्नता का साम्य उपस्थित कर उसकी सुगन्धि और सुन्दरता का अप्रस्तुत-विधान उपस्थित करता है। 'गंगा पर गाँव' कहने से गाँव की शीतलता तथा पवित्रता का अधिक प्रभाव पड़ता है। वास्तव में लाक्षणिक प्रयोग भाषा को काव्योपयोगी बनाकर उसमें बड़ी समास-शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। समास-शक्ति का

कामायनी की भाषा

जिस प्रकार काव्य-विषय की गहनता, भाव-चित्रण की सजीवता तथा विचारों की उत्तमता एवं सूक्ष्मता में हिन्दी काव्य कामायनी को पार नहीं कर सका है, उसी प्रकार भाषा की समास शक्ति में, लक्षणा की मूर्त्तिमत्ता में, तथा पद-विन्यास की सजीवता में कामायनी आधुनिक युग के शिखर पर है। खड़ी बोली के प्रारम्भिक युग में भाषा बड़ी इतिवृत्तात्मक रही; उसमें न तो कोमलता थी और न संगीत था और न अर्थ-गांभीर्य ही। लाक्षणिक प्रयोगों का अभाव था, अतः न उसमें व्यंजक-शक्ति थी और न समास-शक्ति। गुप्त जी और महावीरप्रसाद द्विवेदी इसी युग के प्रतिनिधि कवि थे। पंत, प्रसाद और निराला ने ध्वन्यर्थ की व्यंजना करनेवाले तथा चित्र उपस्थित करनेवाले विविध शब्द एवं प्रयोग हिन्दी शब्दकोष से ढूँढ़ निकाले। पंत जी अपनी कोमल तथा चित्रमयी पदावली और निराला अपनी ध्वन्यर्थ व्यंजना के लिए प्रसिद्ध हैं। पर उनकी भाषा प्राथमिक प्रयोग के स्तर पर रह गई। उसमें कहीं स्वाभाविक चित्र हैं तो कहीं कठिन काल्पनिक शब्दाडम्बर। प्रसाद जी की रचनाओं में चाहे छन्द तथा व्याकरण की भूलें हों तथा कहीं-कहीं प्रसाद गुण का अभाव हो पर उसमें निरर्थकता नहीं है। कामायनी इस अंतिम काव्य-भाषा-विकास के युग के विविध प्रयोगों का परिणाम है, जो यदि पूर्णता को नहीं, तो उसके बहुत निकट पहुँच गया है।

बहुधा कहा जाता है कि प्रसाद जी में प्रसाद गुण की कमी है, पर यह वही लोग कहते हैं जिन्होंने उनकी शैली को समझने की चेष्टा नहीं की। उनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य

(७) निर्जीव वस्तुओं को सजीवता देना—

हँस पड़ा गगनप्जा वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं।

विशेषण-विपर्यय

(८) आतुर पीड़ा—आतुर कर देने वाली पीड़ा

कामायनी के लाक्षणिक प्रयोग बड़े ही स्वाभाविक हैं। वे कठिन कल्पना के आधार पर नहीं हैं। अधिकांश लक्षणाओं का आधार या तो 'मानवीकरण' है या प्रतीक। ये दोनों ही प्रयोग साम्य के आधार पर होते हैं, अतः वे हमारे सामने अप्रस्तुत का चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। वे उपमा का संक्षिप्त संस्करण होकर हमारे सामने आते हैं। नीचे कामायनी के इन लाक्षणिक प्रयोगों के कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं—

(१) मानवीकरण—कवि ने निर्जीव वस्तुओं के वर्णन में उन शब्दों का प्रयोग किया है जो सजीव प्राणी अथवा केवल मनुष्य के सम्बन्ध में प्रयोग किये जाते हैं।

(अ) जगीं वनस्पतियाँ अलसाईं मुख धोती शीतल जल से।

यहाँ पर जगीं का अर्थ है 'उत्पन्न हुईं', अलसाई का अर्थ है 'हिलती हुई' और मुख धोती का अर्थ है कि उनके ऊपर ओस पड़ने लगी अथवा हिमजल से वे धुल गईं।

(आ) 'नेत्र निमीलन करती मानों प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने।'

यहाँ पर कवि ने प्रकृति के जगने का वर्णन किया है। जगने से अभिप्राय हरा-भरा होने से है। वही प्रबुद्ध होने का अभिप्राय है पर 'जगना' शब्द का भी प्रयोग कवि ने नहीं किया। उसके स्थान पर केवल जगने की प्राथमिक क्रिया का नाम ले दिया है—'नेत्र निमीलन करती।'

(इ) कहीं कहीं तो एक ही साथ कवि ने दो-तीन लक्षणाओं को एक ही में गूँथ दिया है।

जलधि लहरियों की अँगड़ाई बार बार जाती सोने।

अर्थ है थोड़े में बहुत कह देना, शब्द कम अर्थ बहुत। इससे भाषा की बड़ी प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। इसका कारण कदाचित् यह है कि लक्षणा में बहुत-सा अर्थ ध्वनित होता है। बात स्पष्ट नहीं कह दी जाती। पाठक को अपनी बुद्धि स्वयं लगानी पड़ती है। इससे उसकी कुतूहल की भावना को शांति मिलती है और साथ ही सफलता का आनन्द मिलता है। इससे उस भाषा के साथ पाठक का तादात्म्य हो जाता है, ममत्व उत्पन्न होता है और वह प्रभाव को बढ़ा देता है।

ये लाक्षणिक प्रयोग आजकल कितने ही स्वरूपों में प्रयुक्त होते हैं।

(१) प्रतीकों के स्वरूप में—'ज्ञान' के लिए 'प्रकाश', अज्ञान के लिए 'अंधकार', 'क्षोभ' के लिए झंझा, 'टीस' के लिए 'बिजली।' ये कुछ प्रचलित आधुनिक प्रतीक हैं। पंत जी के कुछ अपने निज के प्रतीक हैं—

चाँदनी का स्वभाव में वास, विचारों में बच्चों की साँस।

यहाँ चाँदनी का अर्थ है मृदुलता और बच्चों की साँस से भोलेपन का अभिप्राय है।

(२) साम्य के आधार पर—

काँटों ने भी पहने मोती—लहर (कठोर हृदयवाले) (आँसू)।

(३) मूर्त के लिए अमूर्त का प्रयोग—

मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास। (आसन्नमृत्यु व्यक्ति)

(४) अल्पार्थ के स्थान पर निषेध-सूचक शब्द—

कौन तुम अतुल, अरूप अनाम।

(५) आधार के लिए आधेय—

'मर्म पीड़ा के हास' पीड़ित मन।

(६) मानवीकरण—

पराजित कालरात्रि, विलखाती चेतना आदि।

(इ) श्रद्धा देख रही चुप मनु के भीतर उठती आंधी को।
(भावनाओं का प्राचुर्य तथा प्राबल्य)।

(ई) वल्लरियाँ नृत्य निरत थीं
बिखरी सुगन्ध की लहरें,
फिर वेणु-रंध्र से उठकर
मूर्छना कहाँ अब ठहरे।
गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर,
वाणी की वीणा-ध्वनि-सी
भर उठी शून्य में झिलकर।

× × ×

रश्मियाँ बनीं अप्सरियाँ
अंतरिक्ष में नचती थीं,
परिमल का कन कन लेकर
निज रंगमंच रचती थीं।

इसमें नृत्य, वंशी-वादन, मधुप-गुञ्जन, रश्मियाँ, परिमल आदि आनन्द के प्रतीक हैं। मूर्छना दुःख का प्रतीक है और शून्य हृदय का प्रतीक है।

(३) मूर्त्त के लिए अमूर्त्त भाववाचक संज्ञाओं का प्रयोग।

(अ) आज अमरता का जीवित हूँ
मैं यह भीषण जर्जर दम्भ (बड़े दम्भवाला)

(जर्जर दम्भ का विशेषण होने से विशेषण विपर्यय भी है, वास्तव में जर्जर दम्भी है, 'दम्भ' नहीं।)

(आ) ओ जीवन की मरु मरीचिका!
कायरता के अलस विषाद।

यहाँ पर लहरों के उठने-बैठने के लिए 'अँगड़ाई' शब्द का प्रयोग किया है और उस अंगड़ाई को शान्त होने के लिए 'सोने' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार इन दो शब्दों से कवि ने किस लाघव से प्रलय के बाद शान्त होते हुए समुद्र की उस मनुष्य से तुलना की है जो सोता जा रहा है। इसी प्रकार के कुछ और प्रयोग देखिए—

(ई) मौन हुईं वे मूर्छित तानें (मौन हुईं = सुनाई नहीं देतीं। मूर्छित = अज्ञानतावश गाई हुईं।)

(उ) मुखरित था कलरव [यहाँ कलरव विलास का प्रतीक है और उसे मुखरित कराकर (प्रचुर परिमाण में) उसका मानवीकरण किया है।]

(ऊ) अंधकार के अट्टहास-सी मुखरित सतत चिरंतन सत्य (प्राचुर्य)।

(ए) अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभि-राम (रुकी हुई, ठहरी हुई)।

(ऐ) जाग रही थी मर्म व्यथा (अत्यन्त दुःख दे रही थी)

(ओ) असफलता अधिक कुलाँच रही (चारों ओर असफलता ही मिलती थी।)

(२) प्रतीक—कुछ लाक्षणिक प्रयोग प्रतीक रूप में हमारे सामने आते हैं। प्रतीक रूपक का संक्षिप्त संस्करण है। इसमें प्रस्तुत के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का नाम ले दिया जाता है। उस अप्रस्तुत का वास्तव में उस प्रसंग में कोई स्थान नहीं।

(अ) मुझको काँटे ही मिलें धन्य (दुःख)
हो सफल तुम्हें ही कुसुमकुञ्ज (सुख)

(आ) जीवन में सुख अधिक या कि दुख, मंदाकिनि कुछ बोलोगी।
नभ में नखत अधिक सागर में या बुदबुद हैं गिन दोगी।
(सुख) (दुःख)

यहाँ पर 'अधीर' लहर का विशेषण है। लहर अधीर नहीं होती पर वह अधीर कर देती है। (धीर-समीर में मानवीकरण है और धीर व अधीर में विरोध है।)

(आ) माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारा-सी।

यहाँ पर अलकों को अलसाई बताया गया है जो नहीं होतीं। वे आलस्यपूर्ण व्यक्ति का चित्र उपस्थित करती हैं।

(इ) वेदी की निर्मम प्रसन्नता
पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था,
कोई कुत्सित प्राणी।

यहाँ प्रसन्नता शब्द से वेदी का मानवीकरण हुआ है और प्रसन्नता को निर्मम बताकर विशेषण-विपर्यय द्वारा निर्दयता-पूर्वक की गई बलि का चित्र उपस्थित किया गया है, साथ ही बलिकर्त्ता की प्रसन्नता भी बताई गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने लक्षणा का विचित्र प्रयोग कर काव्य में नाटकीय गुण उत्पन्न कर दिया है। जिस प्रकार कथा-वस्तु के स्वरूप में कवि ने नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया है, विभिन्न सर्ग रंगमंच के विभिन्न दृश्यों की भाँति हमारे सामने आते हैं उसी प्रकार लाक्षणिक प्रयोग भी चित्र उपस्थित करते हैं।

(2) इन लाक्षणिक प्रयोगों के अतिरिक्त कामायनी की भाषा की दूसरी विशेषता है विरोध-सूचक शब्दों का प्रयोग। ये विरोध भी बड़े ही व्यञ्जनापूर्ण हुए हैं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

(अ) चिन्ता के वर्णन में कवि कहता है—

अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय
मोह-मुग्ध जर्जर अवसाद !

ऊपर भाववाची शब्द देवताओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं। 'अलस', 'अगतिमय,' 'मोहमुग्ध' तथा 'जर्जर विशेषण'-विपर्यय भी साथ में लगे हुए हैं।

(इ) कुतूहल रह न सका फिर मौन (कुतूहलपूर्ण मनु)

(ई) मधुर विश्रान्त और एकान्त—
जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य।

यहाँ रहस्य, मौन तथा आलस्य कामायनी के लिए प्रयुक्त हुए हैं। चंचल मन का आलस्य कहकर कवि ने कामायनी का वर्णन कितनी व्यंजनापूर्ण भाषा में किया है। कामायनी को प्राप्त कर चंचल मन भी स्थिर हो जाता है, उसे देखकर मन की चंचलता जाती रहती है, प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो जाती है।

(४) विशेषण-विपर्यय—इसके कुछ उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। अन्य प्रकारों को लक्षणाओं के साथ-साथ इसके प्रयोग हुए हैं। इसमें विशेषण ऐसे विशेष्य के साथ लगा दिया जाता है जहाँ वास्तव में नहीं लग सकता। जैसे आतुर पीड़ा—पीड़ा आतुर नहीं हो सकती वरन् पीड़ित-व्यक्ति आतुर हो जाता है। यह प्रयोग थोड़े से शब्दों में पीड़ित मनुष्य का चित्र उपस्थित कर देता है—

(अ) धीर समीर परस से पुलकित
विकल हो चला श्रांत-शरीर।
आशा की उलझी अलकों से
उठी लहर मधु गन्ध अधीर।

(ऊ) हार बैठे जीवन का दाव
जीतते जिसको मर कर जीव।

यहाँ पर हार और जीत तथा मरकर और जीव में विरोध है।

(ए) स्थिर-मुक्ति प्रतिष्ठा मैं वैसी चाहता नहीं इस जीवन की
ऐसी मुक्ति जिसमें उन्नति तथा विकास का मार्ग वन्द है।

(ऐ) जीवन में अभिशाप शाप में ताप भरा है,
इस विनाश में सृष्टि-कुंज हो रहा हरा है।

विनाश में हरा हो रहा है—सृष्टि आनन्द में मग्न चल रही है—यह आश्चर्य है।

(७) अप्रस्तुत विधान

लक्षणा तथा विरोध के जो स्वरूप दिखाये गये हैं वे सभी साम्य के आधार पर हैं। वे कोई न कोई चित्र हमारे सामने लाते हैं। अप्रस्तुत का काव्य में वह स्थान नहीं है जो व्याकरण के सिद्धान्तों को समझाने में उदाहरणों का है अथवा भूगोल में मानचित्र का है। वे तो स्वरूप अथवा सिद्धान्त समझाने के लिए ही होते हैं पर साहित्यिक उपमाएँ भाववृद्धि के लिए होती हैं। अतः प्रस्तुत और अप्रस्तुत में धर्म-साम्य की आवश्यकता है, आकार में समता हो या न हो। इसी लिए आँख, मुख, हाथ, पैर सभी के लिए कमल की उपमा दी जाती है। मछली, खंजन, मृग आदि विभिन्न स्वरूप की वस्तुएँ आँख के प्रसिद्ध उपमान हैं और इसी लिए वीर पुरुष की उपमा चूहे पर झपटती हुई विल्ली से नहीं दी जा सकती; हाथी पर धावा करते हुए मृगराज से ही दी जाती है। इस दृष्टि से कामायनी के जो अप्रस्तुत के चित्र हमारे सम्मुख आये हैं वे सभी भाववृद्धि करते हैं; जो भाव कवि वर्णन करता है उसी में वे वृद्धि करते हैं।

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी
अरी आधि मधुमय अभिशाप,
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।

चिन्ता अभिशाप है परन्तु चिन्तित मनुष्य अपनी चिन्ता में पड़ा रहना चाहता है। उससे छुटकारा पाने की उसको इच्छा नहीं होती। उसका किसी विनोदपूर्ण काम में भी मन नहीं लगता अतः उसे मधुमय कहा गया है। सुन्दर पाप में भी विरोध है। पुण्य और पाप में तो केवल उर्दू का 'सिनत तिजाद' का सा विरोध है पर सुन्दर पाप व्यञ्जनापूर्ण है। बुद्धि, मनीषा, मति, आशा अपने सभी स्वरूपों में चिन्ता ऊपर से सुन्दर प्रतीत होती है। तभी तो मनुष्य इसकी ओर आकृष्ट होता है।

(आ) मणि-दीपों के अंधकारमय
अरे निराशापूर्ण भविष्य।
देव-दम्भ के महामेध में
सब कुछ ही बन गया हविष्य।

मणि-दीपों के होते हुए भी अंधकार है। यहाँ मणि-दीप वैभव और विलास के प्रतीक हैं और अंधकार अज्ञान का प्रतीक है। अभिप्राय यह है कि वैभव और विलास में मनुष्य अपना मार्ग ठीक-ठीक नहीं देख सकता।

जीवन जीवन की पुकार है
खेल रहा है शीतल-दाह।

[शीतल करनेवाला (शांति देनेवाला) जीवन में कर्म का दाह।]

(ई) खुल रहा मृदुल अधखुला अंग (सुशोभित हो रहा था)

(उ) अवगुंठन होता आँखों का
आलोक रूप बनता जितना। (रहस्यमय)

उपस्थित किया है, मानों कोई सुन्दरी घूँघट में से हमारी ओर ही देख रही है और उस सुन्दरी की चितवन फूल के दूध के समान कोमल, सुगंधित तथा मादक है। रूपक के गर्भ में एक उपमा भी है—

लतिका घूँघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध-सी मधु-धारा,
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा।

(इ) अरी नीच कृतघ्नते ! पिच्छल शिला संलग्न।
मलिन काई-सी करेगी हृदय कितने भग्न॥

कृतघ्नता की उपमा काई से देने में भाव की समानता भी है और कल्पना की नवीनता भी।

(ई) चाँदनी रात में बादल के एक छोटे से टुकड़े के साथ चन्द्रमा का नीले आकाश में घूमने का इससे सुन्दर चित्रण क्या हो सकता था 'सरल हँसमुख विधु जलद लघु खंड वाहन साज' हँसमुख चंद्रमा बादल के छोटे टुकड़े की सवारी में चल रहा है।

(उ) पुरुष के प्रेम का भार पाकर लज्जा के भार से दबी हुई रमणी की कितनी नवीन उपमा कवि ने खोज निकाली है—

धूम लतिका-सी गगन-तरु पर न चढ़ती दीन।
दबी शिशिर निशीथ में ज्यों ओस भार नवीन।

इस उपमा के भीतर भी एक दूसरा रूपक है। नारी उस धुएँ के समान है जो जाड़े में ऊपर नहीं जाता पर वह धुआँ लता के स्वरूप का है जो आकाशरूपी वृक्ष पर नहीं चढ़ती। लज्जा में झुके रहने का चित्र है।

(ऊ) भावानुगामिनी उपमाओं तथा अप्रस्तुत विधानों का कए और उदाहरण दिया जाता है। श्रद्धा को प्रसाद जी ने कल्याण-कारी और इड़ा को बंधन में डालनेवाली बतलाया है। इसी

लाक्षणिक प्रयोगों के अप्रस्तुत हम देख चुके। अब साधारण उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं आदि के चित्र देखिए।

(अ) प्रलय के पश्चात् हिमालय पर्वत पर फिर जीवन का संचार हो रहा है, उसी का चित्र है—

अचल हिमालय का शोभनतम
लता-कलित शुचि सानु शरीर।
निद्रा में सुख-स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर।

लता इत्यादि से सुशोभित हिमालय केवल रोमाञ्चित ही नहीं, वरन् निद्रा में सुख-स्वप्न देखनेवाले व्यक्ति के समान उसका रोमाञ्च है। दोनों की क्षण-भंगुरता को ओर कवि की व्यञ्जना है। आगे देखिए—

उमड़ रही जिसके चरणों में
नीरवता की विमल विभूति।
शीतल झरनों की धाराएँ
बिखराती जीवन अनुभूति।

इन झरनों की उत्प्रेक्षा देखिए—

उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुसक्यान,
मानों हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कलगान।

यहाँ कवि ने झरनों को हिमालय की हँसी बतलाया है, फिर उस हँसी को 'फूट चली' क्रिया की सहायता से वेग से बहती हुई जल-धारा से मिलाया है जो बरबस मार्ग की बाधाओं को हटा कर आगे बढ़ जाती है।

(आ) विविध कामनाओं के कारण जब मन स्वतः ही आनन्द में मग्न रहता है उस समय का कितना सुन्दर चित्र

सब में एक अचेतन गति थी,
जिससे पिछड़ा रहे समीर।

× × ×

मौन नाश विध्वंस अँधेरा
शून्य बना जो प्रगट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते,
तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।

उल्लिखित पदों के रेखांकित अंशों में प्रचलित भाषा का स्वरूप है। यह तो कठिन स्थल का स्वरूप है, पर कथोपकथनों में तथा भाव-सारल्य के स्थान पर तो भाषा बड़ी चलती हुई है। कामायनी ने जब मनु के घायल होने का स्वप्न देखा तब उसके हृदय में विरह पीड़ा हुई और उस पीड़ा में पश्चात्ताप हुआ, अतः उस समय की भाषा का स्वरूप यह है—

आज पड़ा है वह मुमूर्षु-सा
वह अतीत सब सपना था,
उसके ही सब हुए पराये
सब का ही जो अपना था।

× × ×

अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा!
उसी बावले से मिलने को,
डाल रही हूँ मैं फेरा।
रूठ गया था अपने पन से,
अपना सको न उसको मैं।
वह तो मेरा अपना ही था,
भला मनाती किसको मैं।

× × × ×

भावना को लेकर कामायनी (श्रद्धा) तथा इड़ा के केशों के वर्णन में बिल्कुल विरोधी चित्र उपस्थित किये हैं—

(श्रद्धा)　　घिर रहे थे घुँघराले बाल
　　　　अंस अवलम्बित मुख के पास;
　　नील घन-शावक से सुकुमार,
　　　　सुधा भरने को विधु के पास
　　और उस मुख पर वह मुसक्यान,
　　　　रक्त किसलय पर ले विश्राम ।
　　अरुण की एक किरण अम्लान
　　　　अधिक अलसाई हो अभिराम ॥

यहाँ कामायनी के बाल घन-शावक के समान सुकुमार हैं पर इड़ा के बाल कवि ने तर्क के समान उलझे बताये हैं—

　　　　बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल,
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल ।

(५) 'प्रसादता'

जिस प्रकार कामायनी की उपमाएँ तथा लाक्षणिक प्रयोग भावानुकूल हुए हैं, उसी प्रकार उनकी भाषा भी प्रसंगवश कठिन तथा सरल हो गई है। जहाँ पर चिंतन अथवा कुछ रहस्य का विषय है वहाँ की भाषा कुछ कठिन और लाक्षणिक हो गई है और जहाँ भावों का अबाध स्रोत है वहाँ भाषा में भी प्रवाह है। इसी लिए चिंता अध्याय की भाषा कुछ कठिन है पर उसमें भी हिन्दी के चलते प्रयोगों का सहारा नहीं छूटने पाया। यही प्रसाद जी की विशेषता है। इसमें प्रियप्रवास की संस्कृत पदावली नहीं मिलेगी जिसमें हिन्दी नाममात्र को ही हो।

　　सौरभ से दिगंत पूरित था,
　　　　अन्तरिक्ष आलोक अधीर ।

(ऊ) कानों के कान खोल करके

सुनती थी कोई धुन गहरी ।

इन प्रयोगों में 'खोलकर' के स्थान पर 'खोल करके' कहकर और 'जुड़नेवाली' के स्थान पर 'जुड़ने की' कहकर कवि ने उनको अधिक चलता बना दिया है।

परन्तु ये सब बातें होते हुए भी कामायनी की भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं हो सकी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इधर प्रसाद जी ने ध्यान ही नहीं दिया। कवि को इस सम्बन्ध में कुछ स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त है परन्तु इस स्वतंत्रता का प्रयोग उन्होंने अधिकार से अधिक किया है। कहीं विभक्ति का पता नहीं और कहीं विभक्ति के लगने से संज्ञा में आवश्यक विकार नहीं किया गया।

लिङ्ग का ध्यान नहीं रक्खा गया। प्रान्तीयता के दोष तो अनेक स्थानों पर हैं। कहीं कहीं छन्द-दोष भी पाये जाते हैं। तुक के लिए शब्द विकृत कर दिये गये हैं। मुहावरे बिगाड़ दिये गये हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

१ (अ) लिङ्ग—

तुहिन-कणों, फेनिल लहरों में,
मच जावेगी फिर अंधेर ।
(जावेगा)

(आ) आँख बन्द कर लिया क्षोभ से,
(लीं)
दूर दूर ले चल मुझको

(इ) काली आँखों की तारा में,
(के तारे)

(विभक्ति के प्रयोग से तारे होना चाहिए न कि तारा)

थके हुए थे दुखी बटोही
वे दोनों ही माँ-बेटे—
खोज रहे थे भूले मनु को,
जो घायल होकर लेटे।

इसके अतिरिक्त हिन्दी के चलते प्रयोग और मुहावरे, जो भाषा के प्राण हैं, सारे ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं—

(अ) कहा आगन्तुक ने सस्नेह
अरे तुम इतने हुए अधीर,
हार बैठे जीवन का दाँव
जीतते जिसको मर कर वीर।

(आ) किन्तु आज अपराध हमारा अलग खड़ा है,
हाँ में हाँ न मिलाऊँ तो अपराध बड़ा है।

(इ) अभी समय है मुझ पर कुछ विश्वास करो तो,
बनती है सब बात तनिक तुम धैर्य धरो तो।
मुक्त नील नभ के नीचे या
किसी गुहा में रह लेंगे,
अरे झेलता ही आया हूँ,
जो आवेगा सह लेंगे।
ठहरो कुछ तो बल आने दो
लिवा चलूँगी तुरत तुम्हें,
इतने क्षण तक श्रद्धा बोली
रहने देंगी क्या न हमें।

(ई) काँप रहे थे प्रलयमयी क्रीड़ा से सब आशंकित जंतु।
अपनी अपनी पड़ी सभी को छिन्न स्नेह का कोमल तंतु।

(उ) अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माया,
वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की।

(आ) करता प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरंद
(वितरण करने को)

(इ) धरा है क्या सुख इसमें
(रक्खा है)—(ब्रजभाषा खड़ीबोली के रूप में)

(ई) रत्न-सौध के वातायन जिनमें आता मधु मदिर समीर
यतिभंग दोष (जिन और में के बीच में यति)

(उ) राशि-राशि बिखर पड़ा है शांत संचित प्यार
(बंगला प्रयोग)

(ऊ) शरद विकास नये सिर से (सिरे से)

इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर भरती के शब्द भी मिलते हैं और कहीं शब्दों से कवि का यथार्थ अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

अस्पष्ट प्रयोग—

(१) धू धू करता नाच रहा था
अनस्तित्व का ताण्डव नृत्य
आकर्षण-विहीन विद्युतकण
बने भारवाही थे भृत्य।
(चिंता)

(२) भक्षक या रक्षक जो समझो
केवल अपने मीन हुए
(चिंता)

(३) तरुण तपस्वी-सा वह बैठा
साधन करता सुरश्मशान
(चिंता)

(इ) शिशिर कला की क्षीण स्रोत
(का)

(उ) एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा
(कर वास रही)

(ऊ) श्वास लिया
(ली)

२ विभक्ति—

(१) लोप

(अ) आह वह पशु और इतना सरल सुन्दर स्नेह,
पल रहे मेरे दिये जो अन्न से इस गेह।
(गेह में)

(आ) आये इस ऊजड़ नगर प्रान्त (में)

(२) विकार नहीं हुआ—

सौदामिनी संधि-सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में
(उजाले)

३ प्रान्तीय भूलें—

(अ) तुम्हें तृप्तिकर सुख के साधन सकल बताया
(बताये)

(आ) अरे पुरोहित की आशा में कितने कष्ट सहे हो
[(आपने) सहे हैं]

४ विविध—

(अ) आती चूम चूम चल जाती
पढ़ी हुई किस टोने से।
([illegible] टोना सी) मुहावरे का विकार।

(६) पहेली-सा जीवन है व्यस्त (उलझा हुआ)

(७) शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं जो निरुपाय
(इधर उधर छिटके हुए)

(८) वह विराग विभूति ईर्षा-पवन से हो व्यस्त
(बिखर कर)
देख लो ऊँचे शिखर का व्योम चुम्बन व्यस्त

(किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। वास्तव में भरती का शब्द है)

कामायनी की भाषा की ये ही प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनको ध्यान में रखने से इस ग्रन्थ के अध्ययन में यदि सरलता नहीं होगी तो सहायता अवश्य मिलेगी।

कहीं-कहीं कठिन कल्पनाएँ भी मिलती हैं—

(१) सुख केवल सुख का वह संग्रह
केन्द्रीभूत हुआ इतना।
छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना॥

(२) आकाश को कवि ने उलटा लटका इन्द्र-नील-मणि महाचषक बतलाया है—

इन्द्रनील मणि महाचषक था
सोमरहित उलटा लटका।
(आशा)

कुछ शब्दों के साथ प्रसादजी ने अपनी विशेष रुचि दिखलाई है। मधुप, मरंद, भ्रमर, वीणा, वंशी के वातावरण से जिस प्रकार उन्हें अधिक स्नेह है उसी प्रकार कुछ शब्दों से। एक 'व्यस्त' शब्द का प्रयोग उन्होंने अनेक अर्थों और प्रसंगों में किया है—

(१) व्यस्त बरसने लगा अश्रुमय
यह प्रालेय हलाहल नीर (बड़े वेग से)

(२) भुज-मूलों में शिथिल वसन की
व्यस्त न होती थी अब माप (ढीली)

(३) अंतरिक्ष में व्यस्त उसी सा
रहा चंद्रिका निधि गंभीर (क्षुब्ध)

(४) कुतूहल खोज रहा था व्यस्त (लीन होकर)
Busy के अर्थ में
हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य

(५) विषमता की पीड़ा से व्यस्त (व्याकुल)
[illegible]

पृ० चिन्ता का वर्णन है ।

५ व्याली—सर्पिणी ।

अभाव की बालिके—अभाव में चिन्ता उत्पन्न होती है ।

हरी-भरी-सी दौड़-धूप—अत्यन्त दौड़-धूप ।

जरा—वृद्धावस्था ।

मधुमय - अभिशाप—चिन्ता मनुष्य को नष्ट करनेवाली है, अतः अभिशाप है, पर चिन्तित मनुष्य अपनी चिन्ता को छोड़ना नहीं चाहता, अतः उसे मधुमय कहा । विरहजन्य चिन्ता में भी यही दशा होती है—

लागिउं जरै,
जरै जस भारू
फिर फिर भुँजइ
तजै नहिं बारू
—जायसी ।

धूमकेतु—पुच्छलतारा, इसका उदय बड़ा अनिष्टकारी होता है ।

६ करका—ओले ।

अनन्त—आकाश ।

पृ० सर्ग—सृष्टि ।

७ सर्ग के अग्रदूत—देवता ।

प्रत्यावर्तन—लौटना ।

मेध—यज्ञ ।

८ कलना—सजावट । तारागणों के सौन्दर्य के नष्ट होने के साथ साथ रात समाप्त हो जाती है ।

९ स्वायत्त— अधिकृत, अपने अधिकार में ।

आक्रान्त—पराजित ।

विशृङ्खल—नष्ट ।

उषा-ज्योत्स्ना—प्रातःकाल की चाँदनी की भांति क्षणिक ।

१० तिरोहित—विलीन ।

मूर्छित - ताने—तान लेनेवालों (गानेवालों) के मूर्च्छित होने के कारण उनकी तानें भी मूर्च्छित हैं । विशेषण-विपर्यय ।

भुज....माप—रतिजन्य-शिथिलता के कारण वस्त्र भुजमूलों में वार वार ढीले होकर नहीं गिरते ।

११ आलोक - अधीर —

परिशिष्ट

चिन्ता—

जल-प्लावन के अनन्तर मनु चिन्ता में मग्न हिमालय पर्वत के एक शिखर पर बैठे हैं। इस सर्ग में हिमगिरि के संक्षिप्त वर्णन के बाद मनु की चिन्ता का वर्णन है।

पृ० ३ उत्तुंग—ऊँचे।

भींगे नयन—अश्रुपूर्ण विषाद के कारण।

जड़ या चेतन इत्यादि—ऊपर जल तथा हिम को क्रमशः तरल तथा सघन कहा गया है, पर नीचे जड़ को चेतन के पहले कर देने से क्रम उलट गया है। जल गतिशील होने के कारण चेतन है और हिम स्थिर होने के कारण जड़ है। पर दोनों के एक ही तत्त्व होने के कारण यह बात इतनी नहीं खटकती।

स्तब्ध—स्थिर।

पवमान—पवन।

सुर-श्मशान—देवताओं की मृत आत्मा। मनु मानो वहाँ बैठे हुए मृत देवात्माओं की साधना कर रहे थे।

पृ० ४ अवयव—शरीर के अंग।

ऊर्जस्वित — शक्तिशाली।

स्फीत—मोटी।

शिराएँ—नाड़ियाँ।

महावट—वह बरगद का वृक्ष जो प्रलय में भी नष्ट नहीं होता है।

वहाँ अकेली इत्यादि—मनु की वेदना सकरुण चिन्ता की कहानी के रूप में प्रकट हो रही थी। उस कहानी को प्रकृति के अतिरिक्त और कोई सुनने वाला नहीं था। आगे

पृ०

बेला—किनारा।

करका—बिजली।

१६ कातरता....वहीं—कातरता से भरी हुई निराशा को देखकर नियति ही वहाँ पथ-प्रदर्शिका बनी अर्थात् कातरता तथा निराशा के कारण, मैं अपनी नाव का मार्ग निश्चित नहीं कर सका। भाग्य जहाँ उसे ले गया वहीं वह गई।

खड़ी-झड़ी—सीधी वर्षा की धाराओं।

विलोड़ित — क्षुब्ध, मथित।

बुद-बुद—बबूले।

ज्योतिरिंगणों— जुगुनू

सूचक - उपकरण — (प्रहर तथा दिन को) बतानेवाले साधन सूर्य, चन्द्र आदि।

पोत—नाव।

उत्तर - गिरि— हिमालय पहाड़।

१८ अमरता का—देवताओं का।

पृ०

सर्ग—सृष्टि।

विष्कंभ—नाटक का एक प्रकार का अंक। जो कथा पहले हो चुकी हो अथवा जो अभी होने वाली हो, उसकी इसमें मध्यम अथवा नीच पात्रों द्वारा सूचना दी जाती है।

मरु—रेगिस्तान।

मरीचिका—मृगतृष्णा

मरीचिका! विषाद! अमृत! तथा अवसाद! ये सब देवताओं के सम्बोधन हैं।

मोह - मुग्ध—मोह के कारण अज्ञान।

जर्जर—जीर्ण-शीर्ण।

ठाँव—स्थान।

अंक—गोद।

हिमानी—बरफ़।

शीतल—शांतिदायक।

१६ सम—संगीत का वह स्थान जहाँ गाने-बजाने वालों का सिर या हाथ आप से आप हिल जाता है। यह स्थान ताल के अनुसार निश्चित होता

पृ० समृद्धि तथा वैभव के प्रकाश की चकाचौंध से अधीर।

अचेतन-गति—विलास में गति तो थी पर वह चेतनता से शून्य थी।

मधुकर....आवर्त्तन—जिस प्रकार मकरंदपान करने के लिए भौंरा फूलों के ऊपर बार-बार चक्कर काटता है, उसी प्रकार देवांगनाओं की भौंहें नाच रहीं थीं।

विछलता—फिसलता था। देव बालाएँ पाउडर के स्थान पर कल्पवृक्ष का पराग लगाती थीं।

१२ अमरते !—देवताओं को कवि सम्बोधन करके कहता है।

अंग्रेजी का personification (मानवीकरण) अलंकार। इसी प्रकार अतृप्ति, प्यास, विलास, में मानवीकरण अलङ्कार है।

द्विधा—चिन्ता।

पृ० वातायन—खिड़की।

मधु-मदिर—पराग से मस्त।

तिमिंगिल—मछली की भाँति का बड़ा जन्तु।

१३ वे अम्लान .... सुर-बालाएँ—खिले हुए सुगन्धित फूलों तथा मणियों की मालाएँ ही आज विलासिनी देवबालाओं की श्रृंखला बनी हुई हैं, जिनमें वे बँधी हुई हैं।

उआला जलती—ज्वाला नष्ट होती है।

व्यस्त—बड़े वेग के साथ।

झंझा—आँधी।

झटके—झोंका।

१४ मित्र—सूर्य।

वरुण व्यस्त थे—वरुण जल के देवता हैं, वे काम में लगे हुए थे अर्थात् समुद्र में बड़ी भारी हलचल थी।

स्तर—तह।

अवयव—अंग।

ह्रास—नाश।

१५ व्यस्त—बेचैन।

(२) आशा

पृ०

२३ अंतर्निहित—लुप्त ।
विवर्ण—फीका रंग ।
त्रस्त—दुखी ।
सिर से—सिरे से ।
नव..... पराग—बरफ के प्रसार के ऊपर अनुराग भरी (सुनहरी) किरणों का प्रकाश बिखरता था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो श्वेत कमल के ऊपर पीला पराग हो।
निमीलित—खोलती हुई।
अँगड़ाई सोने जाती—लहरों का वेग कम हो जाता था।
धरा—पृथ्वी।

२४ चषक—प्याला।
इन्द्रनील-मणि-चषक—आकाश।
आकाश रूपी इन्द्रनील मणि के प्याले से देवता सोमरस पीते थे।
पवन साँस ले रहा—पवन चल रहा था।
हेम—सोना।

पृ० (सुनहरी किरणों की ओर संकेत है।)

२५ विश्वदेव—एक प्रकार के देवता, जिनकी पूजा नांदीमुख श्राद्ध में होती है।
पूषा—पृथ्वी।
सोम—चन्द्रमा।
पवमान—पवन।
भूत—प्राणी।
संधान—खोज

२६ वीरुध—वृक्ष और वनस्पति आदि।
प्रवचन—व्याख्या।

२७ अपने हृदय में अनुभूत आशा का मनु द्वारा वर्णन।
स्पृहणीय—वांछनीय।
स्मिति—मुस्कराहट।
शीतल-दाह—कवि ने आशा को भी एक प्रकार की चिंता माना है। आशा दाह है पर उसके साथ प्रसन्नता है अतः वह शीतल है, (बुद्धि, मनीषा, मति आशा, चिन्ता तेरे हैं कितने नाम)

पृ० है। सृष्टि के महानृत्य में मृत्यु भी एक प्रकार का सम है। पर यह सम साधारण नहीं, विषम है। (विषम भी गाने में एक प्रकार का ताल है)।

स्पंदन—गति, जीवन।

माप—नाप; प्रसाद जी ने मृत्यु को जीवन की नाप कहा है।

तेरी…अभिशाप—सृष्टि नष्ट होकर मृत्यु की ही विभूति बन जाती है।

मुखरित—बोलती हुई, अंधकार का बढ़ा हुआ रूप।

सौदामिनी—बिजली।

जीवन तेरा....उजाला में—मृत्यु से मनु कह रहे हैं कि जीवन तेरा ही छोटा सा अंश है। जिस प्रकार नील मेघ-माला में थोड़ी-सी देर के लिए बिजली चमक जाती है, उसी प्रकार मृत्यु थोड़ी देर के लिए प्रकाश में आ जाती है, वही जीवन है।

पृ० पवन....शब्दों को—मनु द्वारा बोले हुए शब्दों को सुननेवाला कोई नहीं था। वे शब्द वायु में ही लीन हो जाते थे। अतः पवन द्वारा शब्दों को पीना कहा गया है।

निर्जनता...पास—वायु के चलने की आवाज़ को कवि ने निर्जनता की उखड़ी हुई साँस कहा है। जो रुक-रुक कर झोकों में चलती है, वही हिमशिलाओं से प्रतिध्वनित होकर लौटती है। उसे कोई सुननेवाला नहीं। अतः कवि ने उसे दीन कहा है।

आकर्षण....भृत्य—जो विद्युत्कण, अब तक देवताओं के भारवाही सेवक थे, वे ही अब आकर्षण-रहित हैं। उनमें अब शक्ति नहीं।

कुहासों—कुहरे में उड़ते हुए छोटे छोटे जलकण।

सौर—सूर्य से विशेषण।

आवर्त्तन—चक्कर।

पृ० मनुष्य जिस अभाव (कर्मो) का अनुभव करता है, उसकी कथा।

३८ जब कामना···इत्यादि —साँझ होते ही एक तारा आकाश में चमकने लगा। वह 'कामना' का दीपक सा प्रतीत होता है, जो संध्या की साड़ी (लाल, नीले बादलों) के बीच में से चमकता है। वही कामना की हँसी है।

टोने-से—जादू-सा।

तुहिन—बरफ़।

रजत कुसुम आदि··· कवि चाँदनी को चाँदी के पुष्प का नया पराग बतलाता है।

४० पगली, मतवाली, भोली-भाली रात के सम्बोधन हैं।

(३) श्रद्धा

४५ श्रद्धा ने मनु को देखकर उनसे परिचय पूछा। उसी के प्रश्न से यह सर्ग प्रारम्भ होता है।

संसृति-जलनिधि-तीर

पृ० —संसार रूपी समुद्र के किनारे।

अभिषेक—पूजा के लिए जल छिड़कना या स्नान कराना।

४६ कुसुम वैभव में लता समान—फूली हुई वेल के समान।

हृदय की...आदि—उदार हृदय तथा उसी के समान उदार शरीर।

शिशु-साल—साल का पौदा।

मसृण—कोमल।

वर्म—कवच।

माधवी—वसन्त की।

अंस—कंधा।

४७ घन-शावक— छोटे-छोटे बादल।

(शावक—बच्चे)

४८ मधु-राका—चैत्र की पूर्णिमा।

उलका — टूटनेवाले तारे। यथार्थ में ये तारे नहीं होते, बड़े बड़े पिंड होते हैं जो शून्य में बड़े वेग से दौड़ते हैं। जब वे

पृ० शाश्वत—सदैव।
२८ यवनिका—पर्दा।
स्वर्ण-शालियों—सुनहली धानों।
शाल—एक प्रकार का धान जो हेमन्त ऋतु में कटता है।
शरद इंदिरा—शरद-लक्ष्मी।
२९ हिमालय पर्वत का वर्णन-
सानु—ऊँचा।
पुलकित—लता इत्यादि को कवि हिमालय का रोमांच कहता है।
उसी असीम⋯कल-गान—कवि हिमालय के झरनों के कलकल को उसकी हँसी बताता है।
३० संध्या-घनमाला—शाम के रंग-बिरंगे बादल।
तुषार-किरीट—बरफ का मुकुट।
प्राङ्गण—आँगन।
सुढर—सुन्दर ढालू।
३२ पाक—यज्ञ।
वह्नि—अग्नि।
अर्चियाँ—ज्वालाएं।

पृ० समिद्ध—प्रज्वलित।
अर्धप्रस्फुटित—अपूर्ण।
३३ सकर्मक— कर्म में लीन।
३४ घन—घने।
ग्रह-पथ के आलोक वृत्त से—ग्रहों के मार्ग की प्रकाश रेखाओं से।
निशीथ—आधी रात।
उद्‌गीथ—सामवेद के गान।
३५ ऊर्मिल—लहरोंवाले।
व्यस्त—बिखरा हुआ।
उलझता था—प्रकट होता था।
द्वंद्व—दुःख-सुख, रात-दिन आदि।
३६ दिवारात्रि⋯शृङ्गार—सूर्य तथा वरुण बालाओं का अक्षय शृङ्गार दिन-रात चल रहा था।
(दिवा-रात्रि था मित्र-वरुण की बाला का अक्षय शृङ्गार।)
३७ संवेदन—वेदना।
अभाव असफलताओं की गाथा—असफलता में

पृ० सब विलास के उपकरण तथा प्रतीक हैं।

वह कोलाहल एकान्त बना— वही कोलाहल (विलास-पूर्ण उपकरणों का समुदाय) अब एकांत के रूप में परिणत हो गया है; मेरा हृदय फिर सूना है।

रुकी······अभिलाषा की —अभिलाषा आगे चलती रही। मनु की इच्छाओं का आगे वर्णन है।

अवगुंठन...जितना— तू प्रकाशमय है, पर तेरे इस प्रकाश का रहस्य प्रकट नहीं होता।

चल-चक्र वरुण का— अस्ताचल का सूर्य।

वरुण—पश्चिम दिशा।

नव-नील कुंज—हरे-भरे कुंज।

हिमकणिका—ओस की बूँदें।

इंदीवर—कमल।

कारा—बंदीघर।

६

पृ० कृतिमय—सृजन की बहुलता।

६६ प्राणों की छाया—मन की अभिलाषा का संबोधन

अक्षयनिधि—मन की अभिलाषा का संबोधन।

सुलझन का गान— सुलझन की शक्ति।

माधवी—चैत की।

अलसाई···अलकों— आलस्य उत्पन्न करने वाले अँधेरे में।

संज्ञा—ज्ञान।

व्रीड़ा—लज्जा।

विभ्रम—आतुरता।

व्रीड़ा है आदि—मनु की समझ में प्रकृति का रहस्य नहीं आता। वह उसे देखना चाहते हैं, पर प्रकृति अपने मुख पर घूँघट डाल लेती है और आँखें बन्द कर लेती है, अतः उसका रहस्य और गुप्त होता जाता है।

६८ छाजन—आच्छादन।

निस्वन—शब्द।

७१ मनु स्वप्न में काम की

५० हमारे वायुमंडल में आ जाते हैं तो पवन के संघर्पण से जल उठते हैं और हमको दिखाई देने लगते हैं। अधिकांश तो चू रोह जाते हैं और कभी-कभी बड़े-बड़े पत्थरों के रूप में पृथ्वी पर भी गिर पड़ते हैं।

४६ व्यस्त—उलझा हुआ।

अभिलाषा कलित—अभिलाषाओं से पूर्ण।

सजल अभिलाषाएँ—अश्रुपूर्ण आकांक्षाएँ।

स्वर्ग के जीवन का अंत प्रलय में होने के कारण दुःखपूर्ण है।

विवर—गुफा।

५१ कुतूहल''''सत्य—कुतूहल-वश होकर मैं हृदय की सत्ता का सत्य खोज रही थी।

सम्भार—सामग्री।

५२ विश्रब्ध—शान्त।

५३ उन्मीलन—विकाश।

सर्ग—सृष्टि।

५४ भूमा—भगवान्।

५५ निर्मोक—वह चमड़ा जो शरीर से झड़ता रहता है, केंचुल।

५६ उत्स—स्रोत।

(४) काम

६३ मनु अपने आप कुछ कह रहे हैं और सोच रहे हैं। उन्हें काम की अनुभूति होने लगी है। वे उसको जीवनरूपी वन का वसन्त संबोधन कर अपनी बात कह रहे हैं।

कोरक—कली।

विछलन—रपटन।

लतिका''सारा—कवि देवताओं के विलासमय जीवन के उल्लास का वर्णन प्रतीकों के सहारे करता है।

बेल अपने पत्तों के घूँघट में से पुष्पों के दुग्ध के समान अपनी मधुर चितवन की मधु-धार हमारे हृदय में बहाती रही। बेल, फूल, घूँघट, मधु धार आदि

(५) वासना

पृ०

८१ उद्दाम—तीव्र।

श्रीकलित—शोभायुक्त।

मधुरिमा जाल—सुन्दरता का समूह।

अविरत—लगातार।

चेतना के पाश—मनु तथा श्रद्धा को कवि ने चेतना के पाश बतलाया है, जो चैतन्य होते हुए भी एक दूसरे को फाँसने का प्रयत्न कर रहे हैं।

था समर्पण...भाव—पारस्परिक समर्पण समरसता के साथ ग्रहण किया जाता था।

नियति—भाग्य।

दूर जैसे...रोक—जैसे घने वन के अन्त का प्रकाश आँखों की गति रोक कर दूर होता जा रहा हो, वैसे ही मनु अपने मन की अभिलाषा की पूर्ति नहीं प्राप्त करते थे।

८२ गोलक—सूर्य।

पृ०

कर्म का अवसाद—कर्म का फेर।

निलय—घोंसला।

कोक—चकवा-चकई।

उपकरण—सामग्री।

शस्य—खेती।

धान्य—अनाज।

अतिथि—श्रद्धा।

८३ अतिथि ..... समेत—शासनयुक्त तथा सुरुचि-सङ्गत अतिथि का संकेत चल रहा था।

सन्निध—निकट।

दृष्टि-पथ—आँखों से देखने का ढंग।

स्नेह-शवलित—स्नेह-युक्त।

विराग-विभूति—वैराग्य की धूल।

व्यस्त—छिन्न-भिन्न।

पिच्छल — रपटनी, फिसलने वाली।

राजस्व—ऐश्वर्य, धर्म।

अपहृत — अपहरण किया हुआ।

दस्यु—डाकू।

निर्बाध—बाधा-रहित।

पृ० वाणी सुनते हैं। "प्यासा हूँ मैं अब भी" आदि से यह वाणी प्रारम्भ होती है।

ओघ—प्रचुरता।

वह—ओघ।

अतिचार—द्रुत-वेग।

विधान—नियम, प्रणाली।

वितान—शामियाना।

कृतिमय—कृत्रिम।

७२ आवर्तन—चक्कर।

पुष्पवती—रजवती स्त्री

माधव—वसंत।

७३ मरंद—पुष्प पराग।

कोरक—कली।

संचित—संस्कार।

७५ अंतर है दिन औ रजनी का—वास्तव में और जो दिखाई देता है उसमें दिन-रात का अन्तर है।

साधक कर्म बिखरता है—उसे जानने की चेष्टा निष्फल हो जाती है।

आलोक—प्रकाश।

७६ वात्या—तूफ़ान।

पृ० अमला—लक्ष्मी (रति)

७७ वही—श्रद्धा।

जड़-चेतनता की गाँठ—प्रकृति के आवरण के कारण आत्मा परमात्मा को नहीं पहिचान पाता। यही जड़-चेतनता की गाँठ कहलाती है—

जड़ चेतनहि ग्रन्थि पर गई।
यदपि मृषा, छूटत कठिनई।
—तुलसी।

इस गाँठ की सुलझन वही है।

भूल-सुधारों की—क्या भूल है और क्या ठीक है, यह भी वही बताती है।

वह...विचारों—जीवन के दुखद विचारों के आने पर वह शांति प्रदान करनेवाली है।

७८ हेमाभिरश्मि — सुनहली किरण।

सोमरस—वैदिक कालीन मादक पेय।

पृ०

अपरूप—अद्भुत।

श्रीमन्त—कान्तियुक्त।

९२ अकूल—किनारे से दूर।

जन्म-संगिनि आदि—प्रलय के पहले भी श्रद्धा मनु की भार्या थी।

नीहार—कुहरा।

९३ तमिस्रा—अँधेरी रात

दिवाकर...विश्रान्त—दिन के अथवा परिश्रम करते हुए सूर्य के समान।

व्रज्या—पगडण्डी।

शस्य—हरी कोमल घास।

आह ! वैसा....

परिणाम—हृदय भी उसी प्रकार तुमको पाकर शान्त होता है।

काम—अभिलाषा।

९४ धूम.... .नवीन—जिस प्रकार धुएँ की बेल शिशिर की रात में नई ओस के बोझ के कारण आकाश रूपी वृक्ष पर नहीं चढ़ पाती।

नर्ममय—'मय' निरर्थक है, कोमल।

पृ०

उपचार—-पूजन-विधि।

रास·····नृत्य।

भ्रूलता—-भौंहों की बेल (लज्जा के उपादान तथा अनुभाव)

कदंब—वृक्ष-विशेष।

(६) लज्जा

९७ कामायनी अपनी हृदयस्था लज्जा से कह रही है।

किसलय —— कोमल पत्तियाँ।

दीपक के स्वर में—दीपक की भाँति।

निखरता—प्रत्यक्ष हो जाता है।

बुल्ले—बुलबुले।

बिखरता—नष्ट हो जाता है।

माधव—वसंत।

निशीथ—आधी रात।

९८ सौरभ—सुगंध।

स्मित—मुसकान।

मेरे सपनों...डोल रहा—मैंने अपनी अनुराग-मयी कल्पनाओं के

पृ० वाड़व - वह्नि— वाड़वाग्नि, वह आग जो समुद्र में होती है।

दृप्त—गर्वीली।

सुषमा—सुन्दरता।

८६ ज्योत्स्ना—चन्द्रिका।

छविमान—सुन्दर।

वीरुध—वृक्ष।

दीन - कोना— उसके हृदय-मन्दिर का।

हिम-हास—सुख को देखकर नाशकारी हिम हंस रहा है।

विधु...साज— छोटे बादल के टुकड़ों की सवारी में बैठा हुआ चन्द्रमा।

निभृत—शान्त।

निशामुख—चन्द्रमा

८८ व्यस्त—लगातार।

संबल—पाथेय, मार्ग में काम आनेवाला भोजन।

गह्वर—गुफा।

पवन के घन—भौंरे। बादलों की तरह झूमने वाले हवा के झोंके।

मदिर—मदपूर्ण।

पृ० सव्रीड़—लज्जा-सहित।

चेतना... चक्राकार— ज्ञान के चारों ओर यही विचार (कि मैं तुम्हारा हो रहा हूँ) चक्कर लगा रहा है। अर्थात् बार-बार रह-रह कर मुझे यही याद पड़ता है कि मैं तुम्हारा हो रहा हूँ।

मन्थर—मन्द गति।

घ्राण—नाक।

रंगीन ज्वाला—काल्पनिक सुख से रँगी हुई प्रेमाग्नि।

अग्निकीट— समन्दर नाम का एक कीड़ा जो अग्नि में रहता है।

कुहक—धोखा।

व्यजन—पंखा।

ग्लानि—थकावट।

मुकुल—कली।

९१ खील—भुना हुआ धान, लावा।

अर्चना—पूजा।

तामरस....प्रान्त— कमल रूपी चरणों के पास।

पृ० बताती है। इसी कारण वह अवसादमयी है और रतिश्रमदलिता है।

शालीनता—शील।

कुञ्चित—टेढ़े।

मसलन—एक प्रकार का जालीदार कपड़ा।

कानों की लाली—लज्जा का उपादान है।

१०४ श्रद्धा की बात प्रारम्भ होती है।

निविड़ निशा...आदि—इस प्रकार पूर्ण रात्रि रूपी संसार में प्रकाश की रेखा क्या है?

छाया-पथ — आकाश गंगा।

निरीहिता—अनिच्छा।

१०५ श्रम-शीला— परिश्रम करती हुई।

नर - तरु— पुरुषरूपी वृक्ष।

उत्सर्ग—दान।

१०६ संकल्प - अश्रुजल—निश्चय के आँसुओं से।

नग-पग-तल— पहाड़ की तलहटी।

पृ० विरुद्ध—संघर्ष का विशेषण है।

संधिपत्र—देव, दानवों की संधि। भले - बुरे विचारों का समन्वय।

(७) कर्म

१०६ कर्म...मनु को—काम शीर्षक सर्ग की अन्तिम पंक्ति में बताई हुई बेल—'देवों के सोम सुधारस की मनु के हाथों में बेल रही'—कर्म-सूत्र के संकेत के समान थी।

शिंजिनी—प्रत्यंचा।

जीवन-धनु— जीवन रूपी धनुष।

यज्ञ-यज्ञ आदि—देव-संस्कृति के मार्ग पर चलना मनु ने प्रारम्भ किया, विलास के मार्ग को फिर ग्रहण किया। सोम-पान भी उसी का प्रतीक है।

तरणी—नाव।

११० बने ...तिल के—तिल के ताड़ हो गये, राई के पर्वत हो गये, मनु

० कारण संसार भर में अनुराग को ही पाया। सर्वव्यापक पवन की भाँति ही उसे भी सर्वव्यापक पाया।

९९ दूरागत—दूर से आने वाला (प्रियतम)।

सत्कृत—स्वागत, आदर, पूजा।

रज्जु—रस्सी।

किरनों का रज्जु... इत्यादि—लज्जा के कारण मैं प्रियमत के साथ खुलकर मिलकर आनन्द नहीं भोग सकती।

नीचे के पद में इसी बाधा का वर्णन है।

कलरव... रुकती है—हृदय से बड़े जोर की हँसी उठती है, पर होठों पर आकर रुक जाती है—अन्यत्र 'स्मित बन जाती है तरल हँसी।'

१०० लज्जा का उत्तर आरम्भ होता है। पहले वह सौन्दर्य का वर्णन करती है फिर अपने को

पृ० उसकी धात्री बतलाती है कुंकुम—केसर।

१०१ वासंती—चमेली की भाँति एक प्रकार की बेल, जिसका पुष्प बड़ा सुगन्धित होता है—माधवी।

मूर्च्छना—संगीत में स्वर का उतार-चढ़ाव।

उस नवल...पर से—जिस प्रकार चंद्रिका सरोवर की लहरों पर फिसलती हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार हृदय में सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता है, और नृत्य सा करने लगता है।

१०२ धात्री—पोषण करने वाली माता।

पंचबाण—कामदेव।

आवर्जना—त्यक्त, परित्याग की हुई।

१०३ अवसाद—दुःख।

अवशिष्ट...... दलिता सी—देवताओं ने निर्लज्ज होकर विलास किया था। अतः वह अपनी असफलता

पृ० स्खलन···कौशल—चेतनता का शिथिल हो जाना।

एक विन्दु...उमड़े रहते हैं—भूल के एक विन्दु से ही विषाद के नद उमड़ पड़ते हैं। अर्थात् थोड़ी सी भूल से बड़ा दुःख उत्पन्न होता है।

आह वही...छाया—वही भूल का एक विन्दु, मनुष्य की ही किञ्चित् दुर्बलता, वही मादकता जिसे पृथ्वी नहीं स्वीकार करती, संसार का अंधकार (अज्ञान) बन जाती है। यह अज्ञान ही भय तथा दुःख का कारण बन जाता है।

नील-गरल — नीला आकाश रूपी विष।

निमीलित—टिमटिमाते हुए।

नील···पिये हो—नीले आकाश रूपी विष से भरा हुआ यह चन्द्रमा रूपी खप्पर लिये हुए हो और

पृ० साथ ही टिमटिमाते हुए तारों से असीम शक्ति दिखाते हो।

अमर—हे देव!

कहो अमर...किधर से—हे देव, इतनी शीतलता तुमको कहाँ से मिलती है, जिससे तुम सारे विश्व का विष पी लेते हो।

१२३ अनंत नील लहर—आकाश की अनंत नीलिमा में।

श्रमकण-से तारे—पसीने के समान तारे।

इन चरणों में—आपके चरणों में।

कर्म-कुसुम—कर्म रूपी फूल।

छाया-पथ—आकाश-गंगा।

लोक-पथिक — लोक-रूपी पथिक।

किन्तु···भिखारी—परन्तु उनको तुम्हारी दुर्लभ स्वीकृति नहीं प्राप्त होती। उनकी भेंट भिखारी की भाँति असफल ही लौटा दी जाती है।

० अत्यन्त भ्रान्त अर्थ समझ गये। पृ०

दैव-बल—दैवयोग से।

सतत—सदैव।

तर्कशास्त्र की पीड़ी—युक्तियाँ।

१११ मेधा—बुद्धि।

तर्क-करों—युक्ति रूपी हाथों।

रसना—जीभ।

११३ मानस ... खिलेगा—मन का आशारूपी फूल खिलेगा; मन की आशा पूरी होगी।

पुण्य-प्राप्त—पुण्य से प्राप्त।

११४ मित्र—सूर्य।

११५ त्वरा—शीघ्रता।

११६ कुत्सित—घृणित।

दृप्त—गर्वीला।

११७ पुरोडाश—यज्ञ का बचा हुआ खाद्य।

शशि - लेखा—चन्द्रमा की एक कला।

११८ तामस—अँधेरा।

ऋजु—सीधा।

११९ निशीथिनी—रात।

उद्दाम—बंधनहीन।

व्रीडा—लज्जा।

अंतर्दाह—पीड़ा।

स्नेह का पात्र—कामायनी के स्नेह का पात्र मनु।

१२० कामायनी अपने मन में सोच रही है।

घुली...उदासी—दिशा दिशा की उदासी आकाश में घुली जा रही है।

१२१ अंतरतम की प्यास—हृदय की प्यास, अभिलाषा।

असफलता...चढ़ती है—अभिलाषाओं के असफल होने के कारण वह प्यास और बढ़ती जाती है।

तिमिर-फणी—अँधेरा रूपी सर्प।

१२२ दंशन—काटना।

कलुष-क्रीड़ा—आँखों के सामने इस प्रकार नाचने लगती है, जिस प्रकार अपने किये हुए पाप अपने आप आँखों के सामने आते हैं।

पृ०

अंगलता—शरीर रूपी वेल।

वितान—मंडप।

मनोभाव...वनता — मन अपने आप कभी आशामय और कभी निराशायम भावनाओं से भर जाता था।

१२७ मन की....लेती—यदि बुद्धि प्रिय को ठुकरा भी देती है, तो भी मन की माया (हृदय की भावनाएँ) उसे नहीं ठुकराती। प्रेम के कारण वह प्रिय फिर हृदय में स्थान पाता है।

प्रात्यावर्तन — टकराकर लौट आना, ठुकराया हुआ प्रियतम, प्रणय शिला से टकराकर लौट आता है।

जलदागम....हथेली—बादल के समय के शीतल तथा जलसिक्त पवन से हिलते हुए पत्ते के समान काँपती हुई हथेली।

उपालंभ — उलाहना

पृ० (कामायनी के इस प्रकार मान करने का उलाहना)

ज्योत्स्ना-पुलकित-नभ—चाँदनी से रोमांचित आकाश।

१२८ दोनों कूलों में—जीवन-रूपी सरिता के दोनों किनारों में, अर्थात् सम्पूर्ण जीवन में।

वासना—भोग-विलास।

श्रम की...चेतनता—जिस क्षण हम इस श्रमित अभावपूर्ण विश्व, उसकी आकुलता तथा अपनी भीषण चेतनता को भूल सकें वही क्षण (अनंत स्वर्ग की भाँति हमारी स्मृति में रहता है।)

दो बूँदों में—सोमरस की दो बूँदों में, जिनसे वह विस्मृति उत्पन्न होगी।

मादकता-दोला—मादकता के झूले पर।

१२९ छकता—उसका शरीर और मन मधुर भाव से भर गया।

पृ० प्रखर ... काया —इस शीघ्र नाश होने वाले संसार में उस विपुल विश्व (ब्रह्म) की माया ही क्षण-क्षण में नये रूप धारण करके उसी (ब्रह्म) की काया के रूप में प्रकट हो जाती है। [प्रसाद जी ने अद्वैतवाद के अनुसार माया को भी ब्रह्म की ही काया माना है।]

१२४ यह...गतिशाली— विश्व की तीव्र गति।

वसता—ठहरता।

विराग—मनु को इस प्रकार विमुख और अपने में ही लीन देखकर श्रद्धा को यह परेखा हो रहा है।

जीवन का संतोप— एक के जीवन का सुख।

एक...कसता क्यों— इस विश्व प्रगति के विश्राम प्रकृति को एक बंधन में कस देते हैं।

१२५ जाग··· मादकता—मनु में वासना तथा मादकता

पृ० भरी हुई थी।

मसृण—कोमल।

हिमकर—चन्द्रमा।

कामायनी के खुले हुए भुज-मूल और साँस के साथ-साथ ऊपर-नीचे होते हुए उरोजों को देखकर मनु का मन कामवासना से भर गया।

रूप...नारी — जिस प्रकार चन्द्रिका से रात प्रकाशित होकर सुन्दर हो जाती है, उसी प्रकार रूप से वह नारी चमकरहीथी।

अलक—बाल।

अलकों...जाते—जीवन का प्रत्येक कण अलकों की डोरी में उलझ रहा था।

विगत—बीते हुए।

श्रम-सीकर—पसीने की बूँदें।

कंटकित—रोमाञ्चित।

स्वस्थ-व्यथा—विचारों की व्यथा-स्वरूप कामायनी थी। पर उसकी व्यथा स्वस्थ थी, क्योंकि उसके विचार उच्च थे।

पृ० अवसाद—दुःख।

दुर्ललिता—बुरी तरह से पालन की हुई।

१४० अभिव्यक्ति —स्पष्टीकरण।

कुशल—चतुर।

सूक्ति—विनोदोक्ति।

१४१ शालियाँ—धान।

क्लांत—थकी हुई।

आयुध—हथियार।

१४२ गुल्फ—एड़ी के ऊपर की गाँठ।

सोवे...हास—पयोधरों के ऊपर बँधी हुई ऊन की पट्टी का वर्णन है; वह ऐसी प्रतीत होती है मानो सुनहरी रंग की बालू में यमुना बहती है अथवा स्वर्ग की गंगा में नील कमल खिले हुए हैं। ऊन की पट्टी काले रंग की है।

१४३ दुर्भर—जो कठिनता से धारण किया जा सके।

सलील—गीली, नम्र।

महापर्व—जनन करने का समय।

१४४ रक्तारुण .... घूम—

पृ० तुम घूम घूम कर रक्त के समान लाल हो रहे हो।

१४५ अवरुद्ध—रुकी हुई।

निरीह—वेचारा।

डीह—खेड़ा, उजड़े हुए गाँव का टीला।

१४६ शावक—(मृग का) बच्चा।

अपनी रक्षा करने में इत्यादि— आत्म-रक्षा के लिए तो मैं हथियार की आवश्यकता समझती हूँ, पर वे (हथियार) निरीह प्राणियों की हत्या में नहीं लगने चाहिए। जीवित रहकर ही वे प्राणी अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

१४७ सेतु—पुल।

१४८ पुआल—कोमल घास का बिछौना।

छाजन— आच्छादित स्थान।

प्राचीर—दीवारें।

पर्ण—पत्ते।

अभ्र—बादल।

१५० नीड़—घोंसला।

पृ० अचला—यहाँ जगती को अचला (स्थिर) कहना उसकी अज्ञता को सूचित करता है; पृथ्वी को भी अचला कहते हैं।

१३० हंत— शोक - सूचक शब्द।

शवता—जीवन-शून्यता।

जहाँ....गावे — हृदय की विलासमयी तृप्ति का गान हो, अर्थात् जहाँ हृदय की विलास करने की इच्छा संतुष्ट हो।

१३१ विश्व...रहती हो— जिसके सामने विश्व की मधुरिमा केवल प्रतिबिम्ब के समान है।

अदृष्ट—भाग्य।

0 वर्त्तमान...होता है-- जैसे ही जीवन के सुख से संयोग होना चाहता है वैसे ही भाग्य अभाव के रूप में प्रकट हो जाता है।

१३२ बचा जान...खोली— अपने सब कर्मों की सीमा हम ही हैं, इसलिए

पृ० हमारी कामनाएँ पूर्ण होनी चाहिए—इस भाव को बचा हुआ जान कर ही मानो सृष्टि फिर से प्रारम्भ हो रही है। यहाँ पर प्रसाद जी ने सृष्टि-रचना का सिद्धान्त बतलाया है।

एकान्त स्वार्थ—कोरा स्वार्थ।

विकसने—विकसाने।

१३३ इतर—अन्य।

१३४ मनुहार—मान-मोचन के लिए विनती।

१३५ हृदय की शिशुता को—हृदय के भोले-पन को।

१३६ अग्नि....सपने—आग अपने आप इस प्रकार बुझ गई, जिस प्रकार जागने पर सुख-स्वप्न नष्ट हो जाता है।

(८) ईर्ष्या

१३८ हिंसा...ललाम—हिंसा के सुख की लालिमा से वह मुख ललाम (लाल, सुन्दर) हो गया था।

पृ० हुई है। हमको कवि यहाँ स्मरण कराता है कि इस संसार का आनन्द अस्थायी है।

वृत्रघ्नी—वृत्रासुर नामक राक्षस का वध करने वाले इन्द्र।

जनाकीर्ण—मनुष्यों से भरा-पूरा।

ध्वांत—अंधकार।

१६१ निरत—लीन।

दुर्निवार—नियमों का विशेषण, जिनका निवारण कठिनता से किया जा सके।

एक—असुरवर्ग।

वह पूर्व द्वन्द्व—सुरासुर के संग्राम की कथा का आरोप कवि मनुष्य के हृदय के आंतरिक द्वन्द्व पर करता है।

१६२ तूल—रुई।

वासना... वनी—तुम समझते थे कि तृप्ति ही सब प्रकार के सुख का मूल मन्त्र है।

पृ० अम्बर अकूल—असीम आकाश।

१६३ सौन्दर्य...पात्र—वह तो सौन्दर्य का समुद्र थी, पर तुम अपनी प्रवृत्ति के कारण उससे विष का पात्र भर लाये।

'कुछ मेरा हो' यही ममत्व और स्वाधिकार की भावना मनु को श्रद्धा से दूर खींच लाई थी।

कलुष—पाप।

तंत्र—सिद्धान्त।

१६४ काम का मनु को अभिशाप।

वर्णों—विभिन्न वर्गों की।

अनवरत—निरंतर।

श्याम प्रभा—काली अमावस्या की रात।

पतङ्ग—भुनगे

१६५ संकुचित असीम अमोघ शक्ति—असीम और अमोघ शक्ति संकुचित हो कर।

महामत्ति—महा आसक्ति।

पृ० प्रतिवर्त्तन—घूमना।
१५२ मलयज—चंदन।
मसृण—कोमल।
१५३ वन - वन...कुरंग — कस्तुरी का हरिण बन कर वन-वन में घूमूँगा।
वितरो—वितरण करो।
जानु टेक—जंघा टेक कर।
१५४ कह—ऐसा कह कर (और)।

(६) इड़ा

किस गहन गुफा
१५७ इत्यादि...महा समीर का मनु से उसका रूपक।
झंझा—आँधी।
अस्तित्व .... तीर — अस्तित्व रूपी चिरंतन धनु से छूटे हुए विषम तीर के समान यह (जीवन) है।
हिमानी—बर्फ।
तुङ्ग—ऊँचे।
स्तिमित—बन्द।
वैसी—पर्वत की सी।
अग—स्थावर, न चलनेवाला।
पतङ्ग—सूर्य।
१५८ एकाकी जीवन में मनु

पृ० के चित्त की अशांति तथा उद्विग्नता का वर्णन।
नभ...डालों में— नीले-आकाश रूपी बेल की डालों में।
नियति-नटी— भाग्य-रूपी नटी।
खोखली शून्यता— नितांत सारहीन विश्व।
कुलाँच रही—छलाँगें भर रही थीं।
१५६ निशीथ—आधी रात।
तुहिन—पाला।
ऊर्मिल—घुँघराली।
इस चिर प्रवास इत्यादि—कवि ने इस अनन्त नीले आकाश में प्राणों की पुकार छाई हुई बताई है।
१६० नगर प्रांत—नगर के पास की भूमि।
विध्वस्त—नष्ट।
आती दुलार....कसक भरी—यहाँ पर प्रेम रो रहा है और सूने स्थानों में यहाँ के प्राचीन निवासियों की वेदना भरी

पृ० आये दिन मेरा—मेरे अच्छे दिन फिर आये ।

१७० सुख ... चक्रवाल—दुख का चक्र सुख के घोंसले को घेरे रहता है ।

ओक—घर ।

निर्भर न करे—मनुष्य दूसरे पर आश्रित न रहे ।

मत कर पसार—हाथ मत फैला ।

१७१ शोधक—खोजनेवाला ।

परिकर कस—कमर कसकर, दृढ़ निश्चय करके ।

कोक—चकवा ।

१७२ निशीथ—आधी रात ।

आवृत कर—ढककर ।

(१०) स्वप्न

१७५ मुरझा कर—मुरझाने के वाद ।

क्षितिज···कर से—आकाश के मस्तक की लालिमा अँधेरे के हाथ से मिट रही है ।

एक चित्र···रेखाओं

पृ० का—श्रद्धा अब सूखकर पिंजर मात्र रह गई है ।

सरसी—तलैया ।

हरित कुञ्जकी छाया—हरे-भरे कुञ्ज की छाया मात्र—कृशता, मलिनता सारहीनता, जीवन शून्यता सभी वातें व्यक्त होती हैं ।

१७६ नग—पर्वत ।

नभ···गिन दोगी—आकाश में तारागण अधिक हैं अथवा समुद्र में बुलबुले; तारागण सुख के प्रतीक हैं ।

दोनों—सुख और दुःख ।

सुर-धनु-पट — इन्द्र-धनुपके वस्त्र; सुख का प्रतीक ।

कुहू—आधी रात ।

निस्संवल होकर—निस्सहाय होकर

१७८ विनिमय प्राणों का—प्राणों का लेन-देन; प्रेम के व्यवहार में दोनों ओर से वरावरी के व्यवहार की आशा नहीं करनी

पृ० नित्यता...पल में—नित्यता नष्ट होकर पल के रूप में आ जावे; सब पदार्थों में क्षणभंगुरता आ जावे।

हो विफल...युक्ति—युक्तियों में व्यर्थ का तर्क हो।

१६६ रक्त-अग्नि की वर्षा—खौलते हुए रक्त की वर्षा।

[वह जाने से रक्त की ही वर्षा का अर्थ निकलता है, अग्नि की वर्षा नहीं; अग्नि की वर्षा से जल जायँ होना चाहिये था]

स्तूप—ढूह, टीला।

रुद्ध—रुके हुए, गतिहीन।

जरा—बुढ़ापा।

ग्रह-रश्मि-रज्जु— ग्रह की किरणों रूपी रस्सियों से।

१६७ नभ-सागर—आकाश से छूनेवाला सागर।

तंद्रालस—तन्द्रा के कारण आलस्य से पूर्ण।

पृ० रजनी ... अशांत—अत्यंत अँधेरी काली रात के समान मनु श्वास ले रहे थे।

निर्लिप्त - भाव सी—उदासीन भाव के समान।

थी कर्म...प्रतीक—सरस्वती कर्म की निरन्तरता की प्रतीक थी।

वह पथिक—सरस्वती।

१६८ प्राची में फैला इत्यादि—सूर्योदय का वर्णन।

अमंद—अत्यंत।

आन्दोलन—हलचल।

वितरने — वितरण करने को।

फलक—पट।

पद्म-पलाश-चषक—कमल के पत्तो के बने हुए प्याले।

१६९ निस्तरंग—विना लहरों के।

नीहार—कुहरा।

निस्वन—शब्दहीन।

हेमवती—सुनहली।

पृ० भाँति भरे थे। उनसे आँसू टपक रहे थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो दर्पण चूर्ण होकर गिर रहे हैं। उनमें हृदय की प्रतिच्छवि भरी हुई थी।

१७६ वर्षा·· डर-डरे—विरह रूपी वर्षा की अँधेरी अमावस्या की रात में स्मृति के जुगुनू डर-डर कर चमक रहे थे।

आकांक्षा··· ढलती—दुःखरूपी नदी की आकांक्षा रूपी लहरें किनारे में आकर टकराती थीं।

दूरागत—दूर से आती हुई।

निशा···धूनी—निशा रूपी तपस्विनी की बुझती हुई धूनी मानो फिर धधक उठी। जो स्मृतिआँ विलीन हो रही थीं, वे अब फिर जागरित हो उठीं।

१८० जल उठते हैं इत्यादि—जीवन के मधुर पल जो जल चुके हैं, वही मानो

पृ० आकाश के हृदय में छाले हो गये हैं। वियोग के तारागण कामायनी को छाले के समान प्रतीत हो रहे हैं।

दिवा-श्रांत—दिन में चलने की थकान से।

निलय—घर।

प्रणय····हुआ जाता—प्रेम की किरण का बंधन मुक्त होते हुए भी बढ़ता (दृढ़ होता) जाता है, और प्रणयी दूर होते हुए भी हृदय के समीप आता प्रतीत होता है।

मधुर··बना जाता—जब चाँदनी के समान तंद्रा आ जाती है, तब प्रेमी (मनु) हृदय पर अपना चित्र बना जाता है।

प्रतारित—वंचित, ठगी हुई।

जो····रही—जिस प्रेम का चित्र कभी फूलों की पंखड़ी द्वारा वायु पर अंकित था वही प्रेम अब

पृ० चाहिए—उसमें केवल देने ही के लिए तैयार रहना चाहिए, लेने के लिए नहीं। उदाहरणार्थ संध्या जब सूर्य दे देती है तब इधर-उधर बिखरे हुए तारे पाती है।

कुहक — इन्द्रजाल ।

वे कुछ दिन इत्यादि—हँसना, अरुणाचल, फूलों की भरमार, (पक्षियों का) कलरव सब सुख और आनन्द के प्रतीक हैं।

शिरीष— एक पुष्प-विशेष।

मधु-ऋतु—वसंत।

जब शिरीष इत्यादि—संयोगावस्था में रात जागते व्यतीत हो जाती थी और दिन में संलाप होते थे। वे व्यतीत होते जाने भी नहीं जाते थे। संध्या समय तारे मुसकाते प्रतीत होते थे। भाषा कितनी लक्षणापूर्ण है—दिन मधुर आलाप-सा करता हुआ आकाश में

पृ० छा जाता है, तारे मुसकाते हैं और स्वप्न जग रहे हैं।

तुहिन—पाला।

मानस—मनरूपी मान-सरोवर।

स्मृति-शतदल—स्मृति-रूपी कमल।

मोती···परदर्शीय —ये मकरंद रूपी आँसू मोती के समान पारदर्शी तो हैं, पर वैसे कठोर नहीं।

आँसू···जग रचने—आँसुओं की बिजली की धारा से नेत्रों को आलो-कित करके प्राण रूपी पथिक विरह के अँधेरे में कल्पना का संसार रचने लगा।

अरुण जलज के कोण ··· इत्यादि—कामायनी के आँसू भरे नेत्रों का वर्णन है। वे नेत्र जो रोते रोते लाल हो गये थे, लाल कमल के समान थे और इनके लाल कोनों में आँसू तुषार की बूँदों की

०

सौमनस्य—प्रसन्नता।

१८४ किन्तु....हैं—किन्तु इन पर अधिकार न जाने किसका है! (मेरा अधिकार नहीं हुआ)।

प्रतिपद् शशि का—प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान।

चेतनते—इड़ा का सम्बोधन।

ये—प्रजा के लोग।

मेरा...उसमें—मेरे भाग्य के धुँधलेपन में तुम पूर्व दिशा की भांति प्रकाश करनेवाली हो।

१८५ परित्राण-पथ नाप उठी—रक्षा के लिए इड़ा चिल्लाने लगी।

रुद्र हुंकार—भयानक हुंकार।

आत्मजा—पुत्री।

रुद्र नयन—शिव-नेत्र

शिंजिनी—प्रत्यंचा।

अजगव—शिवजी का धनुष।

भूतनाथ—शिवजी।

पृ० भूत-सृष्टि — प्राणी-मात्र।

वसुधा—पृथ्वी।

छिन्न...तंतु—भय के कारण सब को अपनी रक्षा की पड़ी हुई थी। स्नेह का कोमल सूत्र टूट गया था।

नियमन....उठ जाय—शासन की कठोरता एक दवाव की भाँति है, उससे या तो शासित वस्तु दब जाती है अथवा ऊपर उठ जाती है।

१८६ भीषणतम — अत्यन्त भीषण।

महानील-लोहित ज्वाला—शिवजी के तृतीय नेत्र की अत्यन्त नीली तथा लाल ज्वाला।

उधर परे—विचित्र, अद्भुत।

वर्गों की...फैली—उन्होंने समाज को ऐसे विभिन्न वर्गों में बाँट दिया जो फिर कभी एकता सूत्र में नहीं बँध सकते थे।

पृ० पपीहे की पुकार द्वारा आकाश में एक करुण-स्वर के रूप में चित्रित है।

१८१ इड़ा अग्नि-ज्वाला-सी इत्यादि—उधर आनंद और उत्साह से भरी हुई इड़ा अग्नि की ज्वाला के समान जल रही थी और मनु का मार्ग प्रकाशित कर रही थी। वह विपत्ति की नदी की नाव थी, उन्नति की चढ़ाई थी, महिमा रूपी पर्वत की चोटी थी, वहाँ थकावट नहीं थी। वह अत्यन्त प्रखर प्रेरणा की धारा के समान वह रही थी।

उपहार दिये — मनु को।

पुष्पलावियाँ = फूल चुनने वाली।

गंधचूर्ण… रज—लोध के फूलों का पराग, सुगंधित पाउडर था।

प्रसाधन = शृङ्गार की सामग्री।

पृ० घन—बड़ा भारी हथौड़ा।

१८२ देश काल का लाघव—स्थान और समय दोनों में उन्होंने लाघव प्राप्त कर लिया था। बड़ी बड़ी दूरियों को वे सहज में तय कर लेते थे और अपनी स्फूर्ति के कारण कामों को बड़ी शीघ्रता से कर डालते थे।

श्रद्धा उस आश्चर्य इत्यादि — यह श्रद्धा के स्वप्न का वर्णन है।

वलभी—मकान के ऊपर का चौवारा।

ऋजु—सीधे।

वेणु—बाँस।

१८३ शैलेय-अगरु—पहाड़ी अगर। एक पदार्थ-विशेष जिसके जलने से सुगन्धित धुआँ उत्पन्न होता है।

क्रतुमय—यज्ञ करने-वाला।

वैश्वानर—अग्नि।

पृ० केन्द्र एक दूसरे को पहिचान कर निरंतर समीप होते जा रहे हैं और अनेकता में एकता स्थापित करते हैं।

स्पर्धा—होड़, एक दूसरे से बढ़ जाने की चेष्टा।

व्यक्ति चेतना—व्यक्तिगत चेतना, सामूहिक से भिन्न।

पर-द्वेष — दूसरों से द्वेष।

पंक = कीचड़।

प्राण...काया में—तुम लोकरूपी शरीर में प्राणों की भाँति रमण करो।

देश-कल्पना इत्यादि—देश की कल्पना कालान्तर में नष्ट हो जाती है और काल महाचेतन में लय हो जाता है।

क्षितिज पटी को उठा—ज्ञान का विस्तार करो।

तालताल इत्यादि—विश्व भर में जो नाद हो रहा है,

पृ० उसी के ताल पर तुम भी नाचो।

१६४ वंधन—नियमों के वंधन।

दुर्धर्ष—अत्यन्त प्रबल।

मेरे हृदय इत्यादि—पर मेरे हृदय के सामने इसकी हलचल भी कम है।

इस कठोर—मनु अपने लिए कह रहे हैं।

१६५ क्रंदन का निज अलग इत्यादि—मनु कह रहे हैं कि प्रलय के चाहे सब भीषण दृश्य उपस्थित हो जायँ, चाहे चारों ओर क्रन्दन मच जाय, पर मैं तुम्हारे साथ रह कर और तुमको पाकर अट्टहास करता रहूँ।

१६६ विनयन—शासन।

१६८ छल पंगु हुआ—छल नहीं चल सकता, काम नहीं कर सकता।

स्खलन — शिथिलता से।

पृ० कक्ष—कमरा।

(११) संघर्ष

१८६ वे—प्रजा के लोग।

प्रांगण—आँगन।

पटो—पर्दों।

श्वापद—जंगली शिकार करनेवाले जीव; भेड़िया, चीता आदि।

जव—वेग, शीघ्रता।

१६० भीत—डरा हुआ।

अविनीत—कठोर।

श्रद्धा ...दे न सका मैं —श्रद्धा को मेरे समर्पण का अधिकार था, उसको भी मैंने अपने को समर्पण नहीं किया।

नियम-परतंत्र—नियमों के अधीन।

निर्बाधित अधिकार—बिना किसी बाधा के मेरे अधिकार को।

विवर—गुफा।

लास-रास — विविध नृत्य।

१६१ उन्मुक्त नर्तन—स्वच्छंदता-पूर्वक नाचना।

पृ० स्पंदन—हिलना।

रुदन हँसी बन—हँसी रोना बन कर।

वशी नियामक रहें—नियम बनानेवाला भी उन्हीं नियमों के वश में रहे।

महानाश... सपना—इस महानाश के बीच जिस क्षण पर मनुष्य का अपना ही अधिकार हो, वही उस जीवन के संतोष का कारण है, शेष स्वप्न के समान झूठा है।

करवट लेकर—विचार करने के पश्चात्।

१६२ मनु... .निबाहें—क्या सदैव तुम्हारे शासन ही के अधिकार को माने और अपनी चेतना की संतुष्टि के क्षण को नहीं ढूँढ़ें।

चिति-केन्द्रों में इत्यादि ...मन के भीतर ज्ञान के केन्द्रों में तर्क वितर्क होता रहता है और वह मन में द्वन्द्व उत्पन्न करता है। वे भूले हुए से चिति-

पृ० था—वहाँ पर भयभीत मौन निरीक्षक (परीक्षास्थल के) की भाँति चुपचाप खड़ा था। उस स्थान की देख भाल मौन के अतिरिक्त कोई नहीं कर रहा था।

२०७ घृणा और ममता—इड़ा के हृदय में मनु के प्रति दोनों भावनाएँ भरी थीं, घृणा भी थी और प्रेम भी था।

वाड़व-जलन— वाड़वाग्नि।

मधु पिंगल—मधु के समान पीली।

शीतलता ...रचती—शीतलता भी अपना संसार बना रही थी।

क्षमा और प्रतिशोध—वहाँ क्षमा भी थी और बदला लेने की प्रवृत्ति भी।

२०८ अतिक्रमण—पार करना।

२०९ जिसके नीचे धरा नहीं

पृ० थी—जिसका कोई आधार नहीं था।

अपने निर्मित....बना—अपने बनाये हुए नियमों से वह स्वयं ही दंड देने वाला हो गया।

अप्रतिहत - गति—अबाध गति।

संस्थान—प्रणाली।

पराये—दूसरे के, शत्रु।

किन्तु...उपकारी था—

२१० पहले वह मेरा उपकारी था, आज वही मेरा अपराधी हो गया।

सर्ग—सृष्टि।

अरे सर्ग-अंकुर ... भले-बुरे— सृष्टि रूपी पौधे के अच्छे और बुरे दो पत्ते हैं।

एक दूसरे की सीमा हैं—एक के बाद दूसरा बारी बारी से आता रहता है।

२११ दूरागत—दूर से आती हुई।

२१२ साल रही—पीड़ा दे रही है।

पृ०
१९९ योग - क्षेम—धन का संचय करना और फिर उसकी रक्षा करना।

प्रकृति-शक्ति — सच्ची शक्ति।

यायावर—एक स्थान पर न रहने वाला सन्यासी।

देव 'आग'— अग्नि-देव।

नाराच—बाण।

शस्त्रों-सा बिजली—बिजली के समान शस्त्र (प्रतीक)।

२०० अलात-चक्र—आग का पहिया।

वह रक्तिम उन्माद—रक्त से सना हुआ पागल-पन, खड्ग के लिए।

तुमुल—युद्ध का कोला-हल।

दुर्लक्ष्यी—कठिन लक्ष्य को भी भेद देनेवाला।

२०१ उच्छ्वास वात—उच्छ्वास प्रकार के पवन।

आकुलि और किलात—वही राक्षस जिन्होंने मनु

पृ० से पशु-यज्ञ करवाया था।

रण यह...आकुलि—हे यज्ञ के पुरोहित किलात और आकुलि! यह रण है, यज्ञ नहीं; यह कठिन कार्य है।

धर्षिता—अपमान की हुई।

२०२ रुद्र-नाराच— शिवजी का बाण।

गिरीं—वे धारें गिरीं; धारें का अर्थ है, तीक्ष्ण धारवाले हथियार — लक्षणा।

मुमूर्षु—मरणासन्न।

(१२) निर्वेद

२०५ जिसके ऊपर...तना—जिसके ऊपर बीते हुए कर्मों के विषरूपी दुःख का पर्दा पड़ा हुआ था।

उल्का—मशाल।

भव-रजनी— संसार-रूपी रात।

निशिचारी भीषण...पंख—निशिचारी भीषण विचार रूपी पक्षी।

२०६ भयमय मौन निरीक्षक

पृ० दी, इसका कितना सुन्दर वर्णन है।

शतदल—कमल।

२२४ कदम्ब—वृक्ष-विशेष।

वही रम्य सौन्दर्य-शैल से—सौन्दर्य रूपी पर्वत से वह निकली।

संध्या अब ले जाती.... विकल व्यथा—पहले रात में सुख-पूर्वक सोता था और नींद दिन भर के सारे परिश्रम को दूर कर देती थी, परन्तु अब मैं रात भर ताराओं का रहस्य समझने की चेष्टा किया करता हूँ (तारे गिनना मुहावरा है) और यह सारी रहस्यमयी कथा संध्या मुझसे प्रति दिन ले जाती है।

सकल...पड़ी—तुम्हारे चरण मेरी सारी कल्पना और कुतूहल के केन्द्र थे।

कुसुम....हँसते— फूल मुझे आनन्द में हँसते जान पड़ते थे।

स्मिति—मुस्कराहट।

पृ० मधुराका—वसंत की पूर्णिमा की रात।

पारिजात—हरसिंगार।

गति-(तुम्हारी) चाल।

मरंद—मकरन्द।

मरंद-मंथर मलयज—मकरंद के भार के कारण से मंद-मंद गति से चलता पवन।

स्वर...मिलता-तुम्हारा स्वर इतना सुरीला था कि वंशी की ध्वनि उसकी समता नहीं कर सकती थी।

२२५ श्वास पवन...मेरे—मेरे श्वासों के पवन पर चढ़कर (तुम गूँज उठीं) मेरी साँस में ही तुम बस गईं।

दूरागत वंशीरव—दूर से आती हुई वंशी की ध्वनि के समान।

जीवन....निकल पड़े—जब तुम मेरे जीवन में बस गईं, तब जीवन रूपी समुद्र से सब मोती निकल आये।

पृ० धुँधली - सी छाया इत्यादि—श्रद्धा अपने किशोर बालक को लिये चली आ रही है। विरह-जन्य कृशता के कारण धुँधली-सी छाया कहा गया है।

कबरी — बालों की वेणी।

२१४ वह्नि—अग्नि।

घुला हृदय...वहा—हृदय पानी होकर बहने लगा, श्रद्धा रोने लगी।

२१६ तुमुल कोलाहल इत्यादि—इड़ा का गान आरम्भ होता है। इस गान के द्वारा प्रसाद जी श्रद्धा की महत्ता बतलाते हैं कि वह किस प्रकार चिन्ता तथा विषाद में शान्ति और सुख प्रदान करती है।

२१७ कन—कण, बूँद।

प्राचीर—दीवार।

कुसुम-ऋतु— वसन्त ऋतु।

पृ० चिर निराशा....जल जात रे मन–निराशा रूपी बादलों से छाये हुए आँसू रूपी तालाब में मैं, भौरों के स्वर से गुंजारित और मकरन्द से पूर्ण खिला हुआ गीला कमल हूँ।

२२० श्रद्धा-अविचल—श्रद्धा में स्थिर।

साध —अभिलाषा।

अपनेपन का बोध—ममता की भावना।

जब जीवन में इत्यादि—मनु अपने अतीत समय के उमङ्गपूर्ण जीवन का स्मरण कर रहे हैं।

२२१ उद्वेलित—हलचल से पूर्ण, आनन्द और उत्साह का प्रतीक है।

२२२ हेम-रेखा—सोने की रेखा।

निकष—कसौटी।

२२३ हृदय बन रहा था इत्यादि—मनु को श्रद्धा ने किस प्रकार सांत्वना

पृ० धूमिल छायाएँ—श्रद्धा और उसके पुत्र से अभिप्राय है।

२३४ दह—जलन।

अनिल—पवन।

२३५ लोचन-गोचर—आँखों से दिखाई देनेवाला संसार।

आलिंगित नग–पहाड़ों से लिपटे हुए।

मृति—नश्वरता।

नति—अवनति।

अवकाश—शून्य।

अवकाश .... मराल—यह जग इस शून्य ब्रह्माण्ड रूपी सरोवर का हंस है।

२३६ ताप-भ्रान्ति–यहाँ ताप वास्तविक नहीं है। उसका केवल भ्रम होता है।

२३९ उपलोपम—पत्थर के समान।

२४० दांत—दबाया हुआ।

प्रणति—विनती।

भ्रान्त—भूला हुआ।

२४१ ध्वान्त—अन्धकार।

पृ० सत—सत्य।

२४३ क्रोड़—गोद।

२४४ निचय—समूह।

२४५ विच्छेद - बाह्य-केवल बाहरी ही वियोग था।

दो—इड़ा तथा मानव।

२४६ स्तवक — फूलों का गुच्छा।

२४७ निस्वन—शब्द।

२५० श्वापद—जंगली पशु।

अनुशय—पश्चात्ताप।

(१४) रहस्य

ऊर्ध्व—ऊँचा

२५७ रवि··· बनाता—बरफ़ की शिलाओं पर सूर्य की किरणें पड़ने से कितने ही नये चन्द्रमा बन जाते थे। सूर्य की किरणें बरफ़ पर पड़ कर प्रतिफलित होती थीं और चन्द्रमा का आभास देती थीं।

२५८ कुंजर-कलभ — हाथी के बच्चे।

प्रतिकृतियों ... ... भगते—प्रतिक्षण दौड़ते हुए नद।

पृ० आशा की आलोक... घेरे—आशारूपी प्रकाश की किरण से और मेरे हृदयरूपी मानसरोवर की। सहायता से एक छोटे से बादल की रचना हुई थी उस बादल को चन्द्मा की किरणें घेरे हुए थीं।

छोटे से बादल का अभिप्राय है सुन्दर कल्पना से।

शशि-लेखा— आनन्द की द्योतक है।

और जलद वह रिम-झिम बरसा—वह बादल बरसने लगा, अर्थात् वह कल्पना सत्य बनकर रस (आनन्द) का संचार करने लगी।

२२६ विभ्रम—हावभाव।

अजस्र—निरंतर।

संवेदनमय हृदय हुआ—तुम्हारे ही सम्पर्क और सहवास से मेरा हृदय भावपूर्ण हुआ।

२२७ मेरा....गठित हुआ—मेरा सर्वस्व क्रोध और मोह से ही (राग, द्वेष) बना हुआ है।

किरनों ने...हुआ—ऐसा मालूम होता है कि प्रकाश की किरणों ने (सच्चे ज्ञान ने) अब तक मेरे हृदय को स्पर्श नहीं किया है।

तमस—अँधेरा।

२२८ बुद्धि तर्क....भर न सका—कवि तर्क और बुद्धि को छेद मानता है। भावनाओं के पूर्ण विकास में बुद्धि उलटे बाधा डालती है।

२२९ उपधान—तकिया।

२३० सब में—प्रजा-वर्ग।

(१३) दर्शन

२३३ जिसमें.....प्रात—निर्मल प्रातःकाल जिसमें अंतर्हित है। यहाँ प्रातः और निशि क्रमशः सुख और दुःख के भी प्रतीक हैं।

धारा.....अटल— धारा तो वह जातीथी, पर ताराओं का प्रतिबिम्ब अपनी जगह पर ही स्थित था।

हमारे कुछ प्रकाशन

तुलसी के चार दल (प्रथम और द्वितीय भाग)—गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वतीमंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा इन चारों ग्रंथों की अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३ तीन रुपये, द्वितीय भाग का २॥≈) दो रुपया ग्यारह आने।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—इसमें हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के विवेचन के अतिरिक्त और भी अनेक भारतीय भाषाओं पर विचार किया गया है। मूल्य ॥) आठ आने।

आलोचनांजलि—इस पुस्तक में स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के आलोचनात्मक लेखों का संग्रह किया गया है। अधिकांश आलोचनायें संस्कृत के प्रतिष्ठित ग्रंथों की हैं। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

साहित्यालोचन—संशोधित (संस्करण) इसमें संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के साहित्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों के अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्यकारों तथा साहित्य-मर्मज्ञों के मत का दिग्दर्शन बहुत ही मौलिक ढंग से कराया गया है। मूल्य ५।-) पाँच रुपये पाँच आने।

हिन्दी-निबन्ध-रत्नावली—इस पुस्तक में हिन्दी के ३ प्रतिष्ठित लेखकों—पंडित माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह और पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के १५ चुने हुए निबन्धों का संकलन किया गया है। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए ये निबंध बड़े काम के हैं। मूल्य २) दो रुपये।

पृ० नये आकार में है ; अन्त में उसमें मिलकर एक हो जायगा।

२८६ मानव···बन जाता— मनुष्य यदि सब विश्व को अपना ही (मैं हूँ)

पृ० समझे तो यह विश्व एक घोंसले के समान सुखद हो जावे।

हेमकूट — सोने का पहाड़।